सेवा उत्सव

वर्ष ५ | गोवर्धन(मथुरा), वि० सं० २०७२, सितम्बर २०१५ | अंक ९

आज राधा रानी बरसाने आई हैं,पाठ प्रभु प्रेमका पढ़ाने आई हैं
योगी ज्ञानी ध्यान लगावें
कृष्ण प्रेमरस फिर भी ना पावें
वही रस ब्रज में बहाने आई हैं, पाठ प्रभु प्रेम का पढ़ाने आई हैं
दिव्य प्रेम का मर्म बताने
सखियों संग प्रकटी बरसाने
रीति प्रभु प्रीतकी सिखाने आई हैं,पाठ प्रभु प्रेमका पढ़ाने आई हैं
प्रकटी जमुना और गोवर्धन
कुंज सरोवर और वृन्दावन
लोक में गोलोक दर्शाने आई हैं, पाठ प्रभु प्रेम का पढ़ाने आई हैं
महा भाव रूपा श्री राधा
सुमरित मिट जाए भवबाधा
नैया पार लगाने आई हैं, पाठ प्रभु प्रेम का पढ़ाने आई हैं

गोवर्धन(मथुरा), वि० सं० २०७२, सितम्बर २०१५

विषय – सूची

	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	सुन सखी! प्रेम नगर की बात	पूज्य स्वामी श्री करुण दास जी महाराज	5
2.	अर्जुन का सारथी (धारावाहिक)	पूज्य संत श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी	9
3.	श्री राधे बाबा जीवन चरित्र (धारावाहिक)	श्री राधेश्याम बंका जी	13
4.	भीड़ और भार	पूज्य स्वामी श्री करुण दास जी महाराज	15
5.	प्रेम भगवान् से भी बढ़कर है	पूज्य संत स्वामी श्रीरामसुखदास जी महाराज	18
6.	माता-पिता का भक्त ही गुरू भक्त हो सकता है	पूज्य संत पंडित श्रीगयाप्रसाद जी	20
7.	तुलसी काष्ठ माहात्म्य	पुराणों से संकलित	23
8.	वह दिन कब आएगा?	परम श्रद्धेय पूज्य श्री हनुमानप्रसादपोद्दार जी	24
9.	भक्त श्री नवलकिशोरदास जी	ब्रज के भक्त से साभार	26
10.	नाम जप का प्रभाव एवं रहस्य	पूज्य संत श्री जयदयाल गोयन्दका जी	31
11.	कपूर दहन-एक दिव्य प्रयोग	संकलित	34

संस्थापक-श्री करुण दास जी

संपादक-किशोरी शरण

वार्षिक शुल्क	पञ्चवर्षीय शुल्क
180 रूपये	680 रूपये

Email Id: sewasukh@yahoo.com, sewasukh@gmail.com

कृप्या सदस्यता शुल्क आप किसी भी बैंक में जाकर नीचे दिये गये बैंक के खाता संख्या में डालकर फोन द्वारा सूचना दें अन्यथा अवधि समाप्त होने पर आपकी पत्रिका बंद कर दी जाएगी: -

राधा कृष्ण परिवार सेवा ट्रस्ट, ओरियन्टल बैंक ऑफ कोमर्स, जतीपुरा

खाता संख्या - 03772191018436 IFSC CODE-ORBC0100377

Ph.- 09456009925

सुन सखी! प्रेम नगर की बात

(पूज्य स्वामी श्री करुण दास जी महाराज)

गताङ्क से आगे

वर्षा ऋतु एवं फुलवारी वर्णन

अरी सखी! देखो तो सही, वर्षा ऋतु कैसी सुहावनी लग रही है। वर्षा ऋतु आगमन से वृन्दावन कैसा शोभायमान लग रहा है। इसका अपूर्व सौन्दर्य हृदय में प्रतिक्षण प्रेम का संवर्धन करता हुआ परम शोभा को प्राप्त हो रहा है। श्रीवन की समस्त भूमि हरी-भरी होकर कैसी फब रही है। श्यामल मेघ उमड़-उमड़कर गर्जन करते हुए बरस रहे हैं। इनका श्यामल वर्ण कितना सुहावना लग रहा है। श्यामल मेघों को देखकर ऐसा लगता है मानों स्वयं प्रियतम घनश्याम ही अपनी प्राणप्रिया श्रीस्वामिनी जी के दर्शन व स्पर्श के लिये बड़ी उतावली से यहाँ आ रहा हो। मेघों की गर्जन व सन-सन की ध्वनि करती शीतल, मंद, सुगंध वायु एवं सुन्दर पक्षियों का कलरव मानों श्रीप्रिया-प्रियतम की अव्यक्त प्रेम केलि को व्यक्त कर रहा हो। हे सखी! आठों दिशाओं से उमड़ती - घुमड़ती घटाएँ बड़ी ही सुहावन -मनभावन लग रही हैं। घटाओं के साथ बीच- बीच में बिजली की चमक से सम्पूर्ण वृन्दावन में चकाचौंध सी छा रही है।

सखी, वैसे तो श्रीवृन्दावन के सभी वृक्ष सदाबहार हैं, वृक्षों पर सदा बसंत का राज रहता है, इन पर हमेशा हरियाली छाई रहती है, यहाँ के वृक्ष सदा नव पल्लव व फल-फूलों से छाए रहते हैं तथापि वर्षा ऋतु में इनकी हरियाली ओर भी बढ़ जाती है। वृक्षों की कोई भी ऐसी जाति नहीं जो इस निकुञ्ज वन में न हो। वर्षा से भीगी इनकी डालियाँ ओर अधिक झुकी जा रही हैं। पवन के झोंको से झूलती हुई इनकी डालियों को देखकर ऐसा लगता है मानो यहाँ के वृक्ष वर्षा ऋतु के आगमन से स्वागत के लिये नृत्य करने लगे हैं। माधवी, मालती, जूही, चमेली, लवंग आदि की लताएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानों मेघों की गर्जन व बिजली की तेज चमक से भयभीत हो वृक्षों से लिपट गई हों और वृक्षों के हरे-भरे पत्तों में छिपना चाहती हों।

वृन्दावन में गूलर, शहतूत, जामुन, करौंदा, बेर, खिरनी, बिल्व, पपीता, छुवारा, बादाम, आलू-

बोखारा, अखरोट, सुपारी, मुनक्का, मौलसीरि, लिसौड़ा, कदम्ब, कुन्द, केवड़ा, बेला, जूही, माधुरी, मालती, चम्पा, पीपल, वट, पाकर, सीरस, शीशम, साल, अर्जुन, विजयसार, खैर, बबूल, रीठा, भोजपत्र, पलास, सेमल, धौं, करील, सागोन, समी, अशोक, रूद्राक्ष, नीम, आम, आंवला, अनार, कदली, नारियल, खजूर, ताल, सेब, नाशपाति, अमरूद, नारंगी, नींबू, इमली, कटहल, बढ़हल, महुआ, कैत, कमरख, फालसा, शरीफा, अनन्नास, मकोय, गुल, दुपहरिया, गुतुर्रा, गुलपरी, मखमली, मटकन, हारशिंगार, अगस्त्य, गुलदौना, मैहंदी, केसर, तमाल, पिंडखजूर, लीची आदि अनेक जातियों के वृक्ष अपनी शोभा व अपार सम्पत्तियों से श्रीलाड़िली-लाल की सेवा में तत्पर दिखाई दे रहे हैं।

सखी देखो, चकवा, चातक, शुक, पिक, कपोत, हंस, सारस, मयूर आदि पक्षी जो अब तक ग्रीष्म ऋतु के कारण वृक्षों के पत्तों में छिपकर बैठे थे, वर्षा ऋतु आते ही इनका अंग-अंग हर्षातिरेक से पुलकित हो उठा है। इनके मनोहारी कलरव से समस्त वृन्दावन मुखरित हो उठा है। परस्पर व अकेले में किलोल करते हुए ये पक्षी कितने मनभावन लग रहे हैं। नृत्य की मुद्रा में ये मोर अपने पंखों को फैलाकर वर्षा ऋतु का स्वागत करता हुआ कितना प्यारा लग रहा है। वर्षा ऋतु आते ही सुखदायक शीतल, मंद, सुगंध वायु बहने लगी है। त्रिविध वायु का शरीर में स्पर्श होते ही ऐसा लगने लगा मानो किसी ने तपते हुए शरीर पर अमृत की शीतल बौछार कर दी हो। इससे शरीर पर पड़े श्रम बिन्दु सूखने लगे हैं।

देखो सखी, सम्पूर्ण वृन्दावन सुवासित हो उठा है। मतवाले भ्रमर भी झुंड-के-झुंड एकत्रित होकर गुनगुनाते हुए पुष्पों पर मंडराते बहुत ही प्यारे मालूम पड़ रहे हैं। वर्षा का जल बहकर कुछ तो मार्गों के दोनों तरफ छोटी- छोटी नहरों से होता हुआ यमुना की ओर जा रहा है और कुछ स्थल-स्थल पर रूककर छोटी- छोटी हृदनियों का रूप ले रहा है। पानी के साथ बहकर आए रंग-बिरंगे विविध प्रकार के पुष्प इन छोटी-छोटी हृदनियों में एकत्रित होकर विविध प्रकार की आकृतियाँ बनाकर तैरते हुए बड़े ही सुहावने लग रहे हैं। मार्गों के दोनों ओर नहरों व फुलवारी में बने रत्नमय घाट व सीढ़ी वाले छोटे-छोटे सरोवरों में खिले नील, रक्त, पीत, श्वेत कमल व उन पर मंडराते काले-काले भ्रमर गुञ्जार करते कितने प्यारे लग रहे हैं। आज मानों सम्पूर्ण वृन्दावन में सुन्दर छबि की तरंगे उठ रही हों। सखी, सावन का यह मास तो बहुत ही सुखदायक व मनोरथों को पूर्ण करने वाला है।

सखी, वर्षा कुछ थम सी गई है। चलो, अब यहाँ (राजभोग कुञ्ज) से हम संध्या कुञ्ज के लिये चलती हैं। यह संध्या कुञ्ज अष्ट मोहिनी कुञ्जों में पांचवी कुञ्ज है। यह मोहन महल से दक्षिण दिशा व यम कोण के बीच मोहन महल से एक चौथाई कोस (पौना कि.मी) पर पड़ती है। यह संध्या कुञ्ज राजभोग कुञ्ज से पश्चिम दिशा की तरफ इतनी ही दूरी (पौना कि.मी) पर पड़ती है। सखी, ये तो मैं बता ही चुकी हूँ कि ये आठों कुञ्जें मोहन महल की आठों दिशाओं में एक चौथाई कोस (पौना कि.मी) की दूरी पर एक ही गोल मार्ग पर पड़ती हैं। इन्हीं अष्ट कुञ्जों में हम सखियाँ अपने हृदयधन श्रीयुगलकिशोर की अष्टयाम सेवा का सुख लेती हैं। श्रीप्रियालाल की रसमयी सेवा ही हमारा जीवन सर्वस्व व प्राणों का

पौषक तत्त्व है। यह अष्टयाम सेवा सुख ही हमारे जीवन के लिये संजीवनी बूटी है।

सखी, अब संध्या कुञ्ज की तरफ चलती हुई व फुलवारी को देखती हुई मेरी बात भी सुनती रहो। श्रीयुगल दम्पत्ति को राजभोग कुञ्ज में राजभोग आरोगवाकर सखियाँ दोनों को मोहन महल विश्राम के लिये ले जाती हैं। मार्ग में वर्षा से भीजते व बचते हुए तथा अनेक प्रकार से किलोल करते हुए मोहन महल के आंगन में अष्टकोण सिंहासन (मंत्रपीठ) पर श्रीप्रिया-प्रियतम मध्याह्न के समय सर्वेश्वर रूप से विराजमान हो जाते हैं। तब समस्त सखियाँ जयगान करती हुई स्तवन करती हैं। इसके बाद श्रीलाड़िली लाल को पुष्प शैय्या पर विश्राम कराया जाता है, फिर सखियाँ उत्त्थापन कराती हैं। उत्त्थापन भोग आरोग-वाकर आचमन करा, मुखवास (सुगंधित चूर्ण) देकर वस्त्र, अलंकारों से दोनों को सुसज्जित करती हैं। इसके बाद श्रीयुगलकिशोर समस्त सखी, सहचरियों सहित वन विहार के लिये मोहन महल से निकलते हैं।

सखी! चलते-चलते हम चौराहे पर पहुँच गयीं, पता ही नहीं चला। देखो सखी, हमारी दायीं ओर वाला मार्ग मोहन महल व बायीं ओर वाला मार्ग श्रीचम्पकलता जी की कुञ्ज से होता हुआ यमुना के चम्पक घाट तक जा रहा है और इस चौराहे को पार करके सामने सीधा मार्ग संध्या कुञ्ज की तरफ जा रहा है।

सखी, मोहन महल से जब श्रीप्रिया-प्रियतम वन विहार करते हुए संध्या कुञ्ज पहुँचते हैं तो इसके कईं मार्ग हैं। कभी-कभी मोहन महल से सीधे संध्या कञ्ज में पहुँचते हैं तो कभी चम्पकलता सखी के कुञ्ज वाले इस मार्ग से होते हुए इस चौराहे से सीधा संध्या कुञ्ज की तरफ मुड़ जाते हैं तो कभी अष्टद्वारी महल के दक्षिण द्वार के सामने से होकर विशद कुञ्ज के बीच वाले कोने से होते हुए संध्या कुञ्ज पहुँच जाते हैं।

सखी, मोहन महल से वनविहार करते हुए संध्या कुञ्ज तक पहुँचने के जितने भी मार्ग हैं, इन सब मार्गो के दोनों ओर अनेक प्रकार के फूल बंगले व विविध प्रकार के पुष्पों की अद्भुत कला -कृतियाँ हैं। प्रतिदिन इनका निर्माण फूल सखी व इनके यूथ की सखियों द्वारा होता है। यह फूल सखी श्रीरंगदेवी जी की अष्ट सखियों में सातवीं सखी प्रेम मञ्जरी जी के परिकर की प्रथम सखी वृन्दा जी हैं। यह वृन्दावन की अधिष्ठात्री सखी हैं। फूल सखी (वृन्दा) की फूली फूलवारी में फूलों से निर्मित कलाकृतियों का अवलोकन करते हुए प्रफुल्लित मन से जब श्रीयुगलवर वन विहार करते हैं तो सखी, सहेली, सहचरी, सुन्दरी, मञ्जरी गण दोनों को प्रसन्न देख-देखकर फूली नहीं समाती। उस समय कोई सखी श्रीप्रिया-प्रियतम पर चंवर डुलाती है, कोई मोरछल घुमाती है तो कोई पंखा झलती है, कोई सखी पानदान, कोई जल झारी तो कोई सुन्दर हाथों में मनोहर दर्पण लिये होती है। सभी सखियाँ समयानुकूल फूल सखी के मनोरथ के अनुसार पद गायन करती हैं।

आओ सखी, अब फूलों से सजे व फूलों के फुव्वारों से शोभायमान इस चौराहे को बायें से पार करते हुए आगे सीधे संध्या कुञ्ज वाले मार्ग से दोनों ओर की फुलवारी में फूलों से निर्मित सुन्दर कृतियों का अवलोकन करती हुई संध्या कुञ्ज चलें।

देखो सखी! अनेक प्रकार की रचनायुक्त

सुन्दर फुलवारी के बीच यह फूलों से निर्मित एक भव्य मण्डल है। देखो, इसके आठों ओर आठ फूलों के बंगलों (महलों) की रचनाएँ कितनी ही मनमोहक लग रही हैं। इस भव्य मण्डल के ऊपर फूलों से निर्मित बारह द्वार का विशाल महल व इस फूलों के महल के बारह द्वारों के दोनों ओर एक द्वार से दूसरे द्वार तक फूलों की लड़ियों से निर्मित जालियाँ (झरोके) बरबस मन को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। इस महल के ठीक बीच में अति सुन्दर अष्टकोण पुष्प शैया देखो। इस पर श्रीप्रिया-प्रियतम विश्राम करते हैं। इस महल के चारों ओर पुष्पों से निर्मित चार जगमोहन (बरामदे) हैं। इनमें पुष्पों से की गई सज्जा बरबस चित्त को चुराए ले रही है।

देखो सखी! इधर आओ, पूर्व के इस बरामदे में विविध रंगों व विविध प्रकार के पुष्पों की एक विशेष झांकी सजाई गई है। फूलों की सज्जा जहाँ पर जैसी होनी चाहिए वैसी ही है। इस सुन्दर झांकी के बीच सुन्दरातिसुन्दर पुष्प सिंहासन को तो देखो। यह अपनी शोभा से झांकी में चार चांद लगा रहा है। इस सिंहासन के सामने पुष्पों से निर्मित यह कितना सुन्दर सभा मण्डप बनाया है। यह तो देखते ही बनता है। सभा मण्डप के बाह्य व अन्तर द्वार के दोनों ओर व आन्तरिक परिसर में पुष्पों की सखियाँ, पुष्पों के ही विविध प्रकार के वीणा, मृदंग आदि वाद्य यन्त्र लेकर यथास्थान विराज रही हैं। सखी, इन पुष्प सखियों को केवल पुष्पों से निर्मित सखियाँ ही न समझो, ये पुष्प सखियाँ श्रीलाड़िली लाल के आदेश पर वाद्यन्त्र बजाकर अपने गायन व नृत्य के द्वारा अनेक प्रकार से मनोरंजन करती हैं। ये सखियाँ श्रीप्रिया-प्रियतम के सभा मण्डप में आते ही क्रियाशील हो अनेक प्रकार से युगल दम्पत्ति को आनन्द प्रदान करती हैं।

देखो सखी! चारों ओर गुलाब, केवड़ा, खस, आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से छिड़काव होने के कारण व नाना प्रकार के सुरभित पुष्पों के कारण पूरा कुञ्ज सुवासित हो रहा है। पुष्प मण्डल पर बने पुष्प महल के चारों ओर गोल मार्ग के दोनों ओर फुव्वारों की इस अनुपम रचना को तो देखो सखी, देखती ही रह जाओगी। देखो सखी! इन फुव्वारों से फूलों की वर्षा हो रही है, लेकिन ये देखने भर के लिये ही फूल हैं, वास्तव में ये जल से ही निर्मित हैं। इधर सामने देखो, दो फुव्वारों से निकलता जल श्रीप्रिया-प्रियतम की आकृति धारणकर नृत्य कर रहा है। इसको देखने से साक्षात् श्रीयुगल किशोर का भ्रम हो रहा है।

अरी सखी, इधर आओ। देखो, जिधर भी दृष्टि जाती है उधर ही एक-से-एक अद्भुत पुष्पों की कलाकृतियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। मन करता है बस, देखती ही रहूँ। सखी, इसी प्रकार श्रीवृन्दावन में दिन-प्रतिदिन नई-नई कुञ्जें निर्मित होती रहती हैं। सखी, जब श्रीयुगलवर सखियों के साथ वन विहार करते हुए इस फुलवारी में आते हैं तो उस समय श्रीयुगलकिशोर का नख-शिख श्रृंगार पुष्पों का ही होता है। कभी-कभी जब श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों में से कोई भी फुलवारी की इन रचनाओं में छुप जाते हैं तो पुष्पों का श्रृंगार होने से उनको ढूंढना मुश्किल हो जाता है।

चलो सखी, वृन्दावन की इस अनुपम शोभा को निरखते हुए अब संध्या कुञ्ज चलती हैं।

क्रमशः

अर्जुन का सारथी (धारावाहिक)

(पूज्य संत श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी)

गतांक से आगेः

दूतत्व की प्रस्तुति

संजय के चले जाने पर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा-'मित्रवत्सल! हमें आपत्तियों से पार करनेवाले परम आश्रय तो आप ही हैं। आपके सहारे ही हम निर्भय हैं। आपके बल पर ही हम अपना भाग दुर्योधन से माँगते हैं।'

भगवान् ने कहा-'धर्मराज! मैं तो आपकी सेवा में उपस्थित ही हूँ। आप अपना अभिप्राय निःसंकोच सूचित करें। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

युधिष्ठिर भाव-विभोर हो उठे-ऐसा भक्तवश्य भगवान्! अपने को स्थिर करके उन्होंने कहा-'आपने संजय की बात सुन ही ली। वह बात संजय की तो थी नहीं, वह तो दूत था। वह अपने स्वामी का अभिप्राय ही प्रकट कर रहा था। धृतराष्ट्रजी हमें अब हमारा स्वत्व देना नहीं चाहते हैं, यद्यपि हमने बहुत कष्ट सहन करके भी उनकी आज्ञा का ही पालन किया है।'

'मेरी इच्छा युद्ध करने की नहीं है। इसी से मैंने दुर्योधन से केवल पाँच गाँव अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और एक जो वे चाहें, इतना ही माँगा था किन्तु वह इतना भी देने को प्रस्तुत नहीं हैं।'

'अब यह स्पष्ट हो गया है कि महाराज धृतराष्ट्र का हमारे साथ व्यवहार सर्वथा कृत्रिम है। वे अपने पुत्रों के लिये हमारा स्वत्व भी हड़प लेना चाहते हैं। दुर्योधन की बुद्धि लोभ के कारण नष्ट हो गयी है।'

'मेरा विचार प्रथम तो यह है कि हम कौरवों के साथ सन्धि करके शान्तिपूर्वक रहें और समान रूप से राज्यलक्ष्मी भोगें किन्तु यदि ऐसा नहीं होता तो अन्त में यही करना होगा कि युद्ध में कौरवों को मारकर हम पूरा राज्य अधिकृत कर लें।'

'मैं न राज्य त्याग करना चाहता हूँ, न कुल का नाश हो, यह मेरी इच्छा है। अतः यदि नम्रता दिखलाने से, थोड़ा स्वत्व त्याग से सन्धि हो जाय तो उचित है। यदि उत्तम सन्धि न हुई तो युद्ध होगा ही।'

'आप ही हमारे प्रिय तथा हितैषी हैं। इस संकट के समय हमें क्या करना चाहिए जिससे हम धर्म और अर्थ दोनों से वंचित न हों, इस विषय में आप ही हमारा मार्गदर्शन करें।'

श्रीकृष्णचन्द्र ने संक्षिप्त उत्तर दिया-'मैं दोनों पक्षों का कल्याण करने की कामना लेकर कौरवों के पास जाऊँगा। यदि वहाँ आपके हित की किसी प्रकार हानि किये बिना सन्धि करा सका तो इसे अपना सबसे बड़ा पुण्य समझूँगा।'

युधिष्ठिर को यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। वे व्याकुल होकर बोले-'आप कौरवों के पास जायँ, यह मेरी सम्मति नहीं है। दुर्योधन बहुत हठी हैं। वह आपकी युक्तियुक्त बात भी स्वीकार नहीं करेगा। वह कितना दुष्ट है, आप जानते हैं। उसके वशवर्ती नरेश वहाँ इस समय एकत्र हैं। आपको वहाँ कष्ट हो सकता है और आपको कष्ट होकर हमें धन, सुख, देवत्व तथा सुरों का साम्राज्य भी मिलता हो तो नहीं चाहिए।'

श्रीकृष्णचन्द्र ने गम्भीर होकर कहा – 'संसार हमें दोष न दे, इसके लिए सन्धि का पूरा प्रयत्न कर लेना चाहिए। अपनी ओर से सब बातें स्पष्ट कर देनी हैं। दुर्योधन कैसा है, मैं जानता हूँ किन्तु आप भी जानते हैं कि मैं क्रोध करूँ तो त्रिभुवन के सब शूर मिलकर भी मेरे सम्मुख नहीं टिक सकते। सिंह के सम्मुख वन के पूरे पशु मिलकर भी आवें तो कुछ कर लेंगे? मेरा वहाँ जाना निरर्थक तो नहीं है। काम न भी बने तो हम यह करके लोक – निन्दा से बच जायँगे।'

अब युधिष्ठिर के पास कोई उत्तर नहीं था। उन्होंने कहा – 'यदि आपको यह उचित जान पड़ता है तो जायँ। मैं अपने कार्य में सफल होकर आपके सकुशल लौटने की आशा करता हूँ। आप हमको भी जानते हैं और कौरवों को भी। दोनों का हित भी चाहते हैं। हम दोनों मिलकर शान्तिपूर्वक रह सकें, इसके लिए आप सब उचित प्रयत्न करें।'

श्रीकृष्णचन्द्र ने अब स्पष्ट कहा – 'महाराज! आप मेरे वहाँ जाने से कोई आशा न करें। मुझे आपका और कौरवों का भी अभिप्राय ज्ञात है। आपकी बुद्धि धर्म में स्थित है और उनकी शत्रुता में निमग्न है। बिना युद्ध किये जो मिल जाय उसी में आप सन्तोष कर लेंगे किन्तु यह क्षत्रिय के लिये उचित नहीं है। क्षत्रिय को भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए। उसका सनातन धर्म है कि पौरूष प्रकट करे। पराक्रमजीवी ही क्षत्रिय है। संग्राम में शत्रु का मान मर्दन करे या मर मिटे। दैन्य उसके लिए प्रशंसा की वस्तु नहीं है। अतः आप पराक्रम करके शत्रुओं का दमन करने को प्रस्तुत रहें।

धृतराष्ट्र के पुत्र बहुत लोभी हैं। तेरह वर्ष आपकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर स्नेह – व्यवहार से उन्होंने बहुत से राजाओं को मित्र बना लिया है। इससे उनकी शक्ति बहुत बढ़ गयी है। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के कारण भी वे अपने को बलवान मानते हैं। अतः आपसे वे सन्धि कर लें इसकी कोई आशा दीखती नहीं। इनके साथ नम्रता का व्यवहार करेंगे तो आपके प्रति ये अधिक कठोर होते जाएँगे। ऐसे कुटिल स्वभाव के लोग तो सभी के वध करने योग्य हैं।'

'पापी दुःशासन द्यूत सभा में केश पकड़कर आपकी महारानी द्रौपदी को घसीट लाया और उस रोती हुई, असहाया को सबके सम्मुख गौ कहकर बार – बार पुकारता रहा। तब आपने अपने पराक्रमी भाइयों को रोक दिया था। धर्मपाश में बँधे होने से वे कुछ भी कर नहीं सके थे। ऐसे अधम पुरुषों को मार ही डालना योग्य है। आप इनके वध का निश्चय करें।'

'धृतराष्ट्र और भीष्म के प्रति नम्रता दिखाना आपके योग्य ही है। मैं वहाँ जाकर आपके सद्गुणों को सबके सामने प्रकट कर सकूँगा। दुर्योधन के सब दोष वर्णन करूँगा। इससे शत्रु पक्ष के लोगों का भी हृदय हमारे पक्ष में हो जायेगा। धर्म और अर्थ के अनुकूल बातें कहकर शान्ति के लिये प्रार्थना करने पर आपकी निन्दा नहीं होगी। कौरवों की ही सबमें निन्दा होगी। वहाँ जाकर मैं उनकी पूरी गतिविधि भी ज्ञात कर लूँगा। संग्राम होगा, मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः आप सभी लोग शस्त्र, अस्त्र, रथ, कवच, अश्व, गज आदि प्रस्तुत कर लें। युद्ध उपयोगी साधन एकत्र करें। दुर्योधन जीवित रहते आपको कुछ नहीं देगा इसे निश्चित समझ लें।'

इस समय भीमसेन ने सबको चौंका दिया।

उनके मुख से किसी ने भी जो बात सुनने की आशा नहीं की थी, अपने स्वभाव के सर्वथा विपरीत इस समय वे बोले – 'मधुसूदन! आप युद्ध की बात न करें, ऐसी बात करें कि वे सन्धि के लिये सहमत हो जायें। दुर्योधन बड़ा असहनशील, क्रोधी, अदूरदर्शी, निष्ठुर, दूसरों की निन्दा करनेवाला और हिंसाप्रिय है। वह टूट जायेगा, किन्तु झुकेगा नहीं। लगता है कि उसके क्रोध के कारण भरतवंश को ही भस्म होना है। अत: आप उससे मधुरवाणी में धर्म, अर्थ से युक्त उसके हित की ही बात कहें। उसके मन के अनुकूल बात कहें। हम सब तो उसके अधीन होकर नम्रतापूर्वक उसका अनुसरण करने को भी तैयार हैं। आप वहाँ जाकर हमारे वृद्ध पितामह तथा अन्य सभासदों से ऐसा करने के लिये कहें जिससे हम भाइयों में मेल बना रहे। दुर्योधन शान्त हो जाए और हमारा यह गौरवशाली वंश नष्ट होने से बच जाए।'

श्रीकृष्णचन्द्र हँस पड़े। भीम के कन्धे पर अपना हाथ रखकर बोले – 'तुम ऐसा कहते हो? तुमने सदा धृतराष्ट्र के पुत्रों को कुचल डालने की बात कही है। तुमने गदा उठाकर भाइयों के बीच में प्रतिज्ञा की है – 'संग्राम में मैं दुर्योधन का इस गदा से वध करुँगा।' तुम्हारा भी उत्साह सम्मुख युद्ध देखकर ढीला पड़ गया? तुम भी शत्रुओं से भयभीत हो गये? नपुंसकों के समान तुममें भी पुरुषार्थ नहीं रहा? तुम तो अपने कुल, जन्म, कर्म को लज्जित मत करो। तुम्हारे चित्त में युद्ध के प्रति ग्लानि और बन्धु वध से मोह जन्य विरति उचित नहीं है। सिंह के समान क्षत्रिय भी दूसरे की दया पर जीवित नहीं रहता। वह अपने पौरुष से जिसे प्राप्त नहीं करता उसे काम में नहीं लेता।'

भीमसेन को उत्तेजित करने के लिये इतना ही पर्याप्त था। उनकी भुजाएँ फड़क उठीं। उन्होंने कहा – 'केशव! आप अन्यथा मत समझें। मैं तो चाहता था कि भरतवंश का नाश न हो, किन्तु युद्ध में मुझे किसी से भय नहीं है। मैं अपना पराक्रम युद्ध भूमि में प्रकट करुँगा। उसको यहाँ वाणी से वर्णन करना व्यर्थ है।'

श्रीकृष्णचन्द्र अब प्रसन्न हुए। बोले – 'भाई भीमसेन! मैं तुम्हारे पौरुष, पराक्रम को भली प्रकार जानता हूँ। तुम्हारा तिरस्कार मैं नहीं करता। मैं सन्धि के लिये प्रयत्न करने कल जा रहा हूँ। उन्होंने मेरी बात मान ली तो मुझे स्थायी सुयश मिलेगा। तुम लोगों का काम बन जायेगा। उनका भी मंगल होगा। लेकिन उन्होंने मेरी बात नहीं मानी तो युद्ध जैसा भयंकर कर्म करना ही होगा। युद्ध का सारा भार तुम पर ही रहेगा। सब लोग तुम्हारी आज्ञा में रहेंगे। अत: तुम युद्ध के लिये आवश्यक तैयारी में पूरे मन से लगो।'

अर्जुन ने भी अपनी ओर से कहा – 'जो कुछ कहना था वह तो महाराज युधिष्ठिर कह ही चुके हैं। धृतराष्ट्र के लोभ और मोह के कारण सन्धि होना सहज नहीं है, यह ठीक होने पर भी शत्रु से सन्धि हो जाए, आप इसी के लिये पूरा प्रयत्न करें। वैसे आपने जो निश्चय किया है, हमें वही मान्य है। धर्मराज की लक्ष्मी जो नहीं देख सका और कपट द्यूत का आश्रय लेकर जिसने उसका हरण किया वह दुरात्मा दुर्योधन भाइयों तथा पुत्रों के साथ मृत्यु मुख में ही जाने योग्य है। दुर्योधन वही है जिसने द्रौपदी का अपमान किया। अब वह पाण्डवों के साथ अच्छा व्यवहार करेगा यह बात मेरी समझ में तो आती नहीं। आप जो करना चाहें, करें और आगे जो हमें करना हो वह भी बतला दें।'

श्रीजनार्दन ने कहा–'अर्जुन! बात तुम्हारी ही ठीक है। मैं कौरव–पाण्डव दोनों का हित करने का प्रयत्न कर रहा हूँ किन्तु जो भावी है उसे बदला नहीं जा सकता। दुर्योधन स्वेच्छाचारी हो चुका है। उसे शकुनि तथा कर्ण जैसे सहचर मिल गये हैं। वे उसके कुविचार को ही उकसाते हैं। अत: परिवार सहित नाश ही उसे शान्ति देगा। भूभार हरणार्थ ही देवता पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं अत: सन्धि कैसे हो सकती है। इतने पर भी मुझे धर्मराज की आज्ञा से प्रयत्न करना है।'

नकुल ने कहा–'माधव! आपने धर्मराज का, भाई भीमसेन का, अर्जुन का विचार सुन लिया। इन सब बातों को छोड़कर शत्रु का विचार जानकर जो आपको उचित लगे वह करें। वनवास के समय राज्य पाने में हमारा इतना आग्रह नहीं था जैसा अब है। अत: हमारे विचार तो फिर भी परिवर्तित हो सकते हैं। समझाकर और धमकाकर भी मन्दबुद्धि दुर्योधन को आप मना लें। आपके कहने पर विदुर, भीष्म, द्रोण, कृप आदि यह बात समझ सकेंगे कि कौरवों का हित किसमें है। अपने इन सब हितैषियों की सम्मति राजा धृतराष्ट्र और अपने मित्रों के साथ दुर्योधन को भी माननी पड़ेगी।'

सहदेव को अपने भाइयों में से किसी की भी बात अच्छी नहीं लगी थी। उन्होंने अपना स्पष्ट अभिमत प्रकट किया–'हमारे बड़े भाई महाराज ने जो बात कही वह तो सनातन धर्म है किन्तु आप तो ऐसा ही प्रयत्न करें कि युद्ध हो। कौरव लोग सन्धि करना भी चाहें तो आप उनसे ऐसी ही बात करें जिससे संग्राम अनिवार्य बने। द्यूत सभा में द्रौपदी की वह दुर्गति देखकर मुझे दुर्योधन पर जो क्रोध आया था वह उसका प्राणहीन शव देखे बिना शान्त नहीं हो सकता।'

सात्यकि अब तक चुपचाप बैठे थे। वे अचानक उठ खड़े हुए। उन्होंने आवेश में कहा–'महामति सहदेव ने यथार्थ बात कही है। इनका मत ही सब योद्धाओं का मत है। दुर्योधन का वध ही मेरे क्रोध को भी शान्त कर सकता है। मुझे तो सन्धि की यह चर्चा ही सह्य नहीं है।'

सात्यकि के बोलते ही वहाँ बैठे सब योद्धा सिंहनाद करने लगे। सब वीरों ने सहदेव का समर्थन किया; किन्तु श्रीकृष्ण ने उस समय उनको कुछ कहा नहीं। वे उत्साहित थे ही। उनका उत्साह बना रहे, यह अभीष्ट था।

सात्यकि ने एक बात और कही–'दुरात्मा दुर्योधन के सद्भाव पर भरोसा करके हम आपको एकाकी हस्तिनापुर नहीं जाने दे सकते। मैं जानता हूँ कि आप सर्वसमर्थ हैं। आप चक्र उठा लें तो प्रलयंकर भी आपका वेग सहन नहीं कर सकते किन्तु वे उन्मादी, दुष्ट, दुर्वृत्ति लोग क्या करेंगे इसका भी कुछ ठिकाना नहीं है। आप यादवों के सर्वस्व हैं। आपका सम्मान सम्पूर्ण यदुवंश का सम्मान है और आपका अपमान समस्त यादवकुल का अपमान है। अत: मैं आपकी सेवा में आपके साथ चलूँगा। आप कृपा करके इसके विपरीत मुझे आदेश न करें।'

श्रीकृष्णचन्द्र ने हँसकर अनुमति दे दी–'महावीर सात्यकि! तुम्हारे साथ की तो मुझे स्वयं आवश्यकता है। चिन्ता की बात नहीं है। वहाँ सब दुर्योधन के ही समर्थक नहीं हैं। सद्भाव सम्पन्न लोग भी वहाँ हैं, भले उनकी प्रमुखता वहाँ न रह गयी हो।'

क्रमशः

श्री राधे बाबा जीवन चरित्र (धारावाहिक)

(श्री राधेश्याम बंका जी)

गतांक से आगेः

पूज्य श्री राधे बाबा समय-समय पर साधकों को साधना सम्बन्धी पत्र लिखवाया करते थे। ऐसे ही एक साधक श्रीमोहनलाल जी को पूज्य श्री राधे बाबा द्वारा लिखवाये गये दो पत्रों के कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं।

श्रीयुत मोहनलाल जी,

बाबा ने लिखवाया है-

आपका पत्र मिला। आपने वृन्दावन में स्त्रियों को दीक्षा आदि दी जाने की बातें लिखकर इस सम्बन्ध में मेरी राय पूछी है। संक्षेप में उन बातों का उत्तर यह है-

1. मन्दिरों में बिना मन्त्र की पूजा होने के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकता। श्रीकृष्ण ही जानें कि वे कौन-सी पूजा ग्रहण करते हैं और कौन-सी नहीं।

2. पर मुझे अत्यन्त विचार हो रहा है कि वृन्दावन में रहकर इन गन्दी बातों को देखने के लिये आप समय क्यों निकालते हैं? मेरी तो प्रेमभरी राय है कि जहाँ कहीं भी जिस स्थान में जिस मन्दिर में बुरी बातों को देखने-सुनने का मौका मिले, वहाँ जाना आप स्थगित कर दें। सर्वत्र आपको यदि यही मिलता हो तो आप जिस मकान में हैं, उसी को श्री प्रिया-प्रियतम का मन्दिर मानकर उसके कण-कण में उनकी भावना कीजिये। वे हैं ही। आपको इसलिये नहीं दीखते कि आप उन्हें देखना नहीं चाहते तथा कहीं आपका मकान भी ऐसे ही वातावरण से भरा हो तो मैं तो यही कहूँगा कि आप वृन्दावन छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जाइये।

3. दूसरे की ओर न देखकर आप अपने को सुधारिये। श्री प्रह्लादराय जी निम्बार्क सम्प्रदाय की दीक्षा लेकर रामायण, गीता-पाठ, संध्या आदि सभी छोड़ दिये हैं तो उनको छोड़ने दीजिये। आपको नहीं छोड़ना चाहिये। सनातन आचार का पालन करते हुए ही आप प्रिया-प्रियतम का अखण्ड स्मरण कीजिये। वे बनते हैं या बिगड़ते हैं, इसका ठेका आपको श्रीकृष्ण ने दिया हो तब फिर तो उनकी सँभाल करनी ही चाहिये, पर यदि ठेका नहीं दिया है तो यह दोहा याद कीजिये-

तेरे भावै जो करो, भलो बुरो संसार ।
नारायण तू बैठ कै, अपनो भवन बुहार ।।

4. महावाणी के पाठ करने का वास्तविक अधिकारी वही है, जिसके मन में (श्रीराधा रानी के

प्रति) स्त्री भावना सर्वथा समाप्त हो गयी हो और जो (प्रिया-प्रियतम की निकुंज लीलाओं में) कामविकार (की कल्पना) से सर्वथा मुक्त हो गया है। महावाणी एक परम दिव्य ग्रन्थ है। बिना अधिकारी बने जो पारायण करता है, उसके जीवन में पतन की ही आशंका विशेष है। प्रिया-प्रियतम उनकी रक्षा करें।

अन्त में आपसे प्रार्थना है कि अनमोल जीवन को इस प्रकार पापमयी बातों को देखने में, सुनने में मत खोइये। इन सबकी ओर से दृष्टि मोड़कर प्रिया-प्रियतम के चिन्तन में मन लगाइये। यही सार है। आपका मेरे प्रति बड़ा स्नेह एवं विश्वास है, इसलिये निःसंकोच अपने मन की बात लिख गया हूँ। बुरा तो आप मानेंगे ही नहीं, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे अन्तर्हृदय का सप्रेम यथायोग्य।

राधा राधा राधा राधा

श्रीयुत मोहनलालजी,

बाबा ने लिखवाया है-

आपका पत्र मिला। उत्तर में रूखी बात लिखानी है। वह यह कि असल में आप वृन्दावन जाकर भी वृन्दावनबिहारी को नहीं देख पा रहे हैं। आपको वृन्दावनबिहारी न दीखकर अधिक समय दीखता है संसार। यही कारण है कि जैसा जीवन आपका होना चाहिये, वैसा नहीं हो पा रहा है तथा जब तक आप पूरी दृढ़ता से अपने जीवन की धारा प्रिया-प्रियतम की ओर मोड़ना नहीं चाहेंगे, तब तक कोई दूसरा ऐसा कर दे, यह सम्भव नहीं। यह आपको ही करना पड़ेगा। आज करें, मरते समय तक करें, कभी भी करें, करना आपको ही है, अतः अभी से सावधान होकर यह कार्य कर लें तो अनर्थकर दुःख, चिन्ता, फिकर से बच जायँ। काम भी कठिन नहीं। केवल इतना ही करना है:-

1. कान से प्रिया-प्रियतम की चर्चा के सिवा दूसरा शब्द जहाँ तक सम्भव हो, बिल्कुल नहीं सुने।

2. आँख से प्रिया-प्रियतम के सम्बन्ध की चीजों के सिवा और दूसरी वस्तु यथासम्भव नहीं देखें।

3. वाणी से राधाकृष्ण-राधाकृष्ण की पुकार एक क्षण भी न छोड़े। बस, फिर जीवन की धारा वृन्दावनबिहारी की ओर बह चलेगी। उस धारा में स्नान करते-करते प्रिया-प्रियतम किसी दिन प्रकट हो जायेंगे और आप निहाल हो जायेंगे।

राधा राधा राधा राधा

क्रमशः

पाठकगण कृप्या ध्यान दें

1. पूज्य श्री महाराज जी की वीडियो कथा आप फेसबुक (Facebook) पर सुन सकते हैं जिसका पता है-

https://www.facebook.com/sewasukh16

2. पूज्य श्री महाराज जी के प्रवचन मैसेज (Message) रूप में प्राप्त करने के लिये आप हमें 'Whats App' के फोन नम्बर 09456009925 पर संपर्क कर सकते हैं।

भीड़ और भार

(पूज्य स्वामी श्री करुण दास जी महाराज)

भजन तो संत संग करने वाले सभी सज्जन करना चाहते हैं; करने की कोशिश भी करते हैं लेकिन उनका प्रयत्न सफल नहीं हो पाता। उत्तर में सभी यही कहते सुने जाते हैं कि 'महाराज! मन बहुत चंचल है। क्या करें? भजन में मन लगाना हमारे बस से बाहर की बात है।'

भजन चिंतन करने से पहले भजन चिंतन विरोधी तत्त्व को जान लेना बहुत जरूरी है। विरोधी तत्त्व को जाने बिना हम इसके विघ्नों से बच नहीं सकते, बचे बिना प्रयास विफल हो जाता है। भजन चिन्तन का सबसे बड़ा विरोधी तत्त्व है भीर और भार।

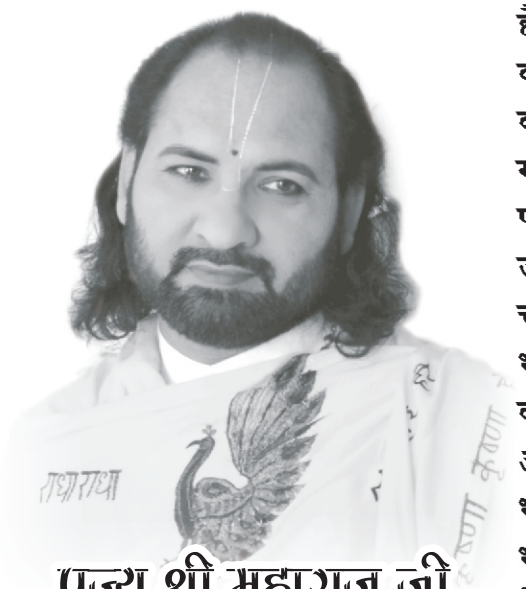

भीर का अर्थ है व्यक्ति व वस्तु की बाहुल्यता। व्यक्तियों की जितनी अधिक भीड़ होगी उतना ही अधिक कोलाहल होगा, अशान्ति होगी क्योंकि सबके मन व विचार एक से नहीं होते, परस्पर विचार टकराते हैं। विचारों की भिन्नता स्वाभाविक ही है, इसमें किसी का दोष नहीं होता है। अपने विचारों को दूसरों पर थोपना व दूसरे के विचारों का विरोध करना भी स्वाभाविक ही है। इसलिये जहाँ भीड़ है वहाँ टकराव अशान्ति तो होती ही है। जितनी अधिक भीड़ उतना ही अधिक कोलाहल ।

भीड़ केवल व्यक्तियों की ही नहीं वस्तुओं की भी होती है। आजकल लोगों को व्यक्तियों की भीड़ से परहेज होने लगा है। अपने घर पर एक या दो संतानों से ज्यादा नहीं चाहते। व्यक्तियों की भीड़ से तो सब बचना चाहते हैं लेकिन वस्तुओं की भीड़ इकट्ठी करते हैं। घर में हर व्यक्ति के पास कई-कई मोबाइल, हर कमरे में टीवी, गाड़ी मोटरसाईकिल जरूरत न होने पर भी कई-कई रखते हैं। जो भी वस्तु बाजार में आती है चाहे उसकी आवश्यकता न भी हो, घर में ले आने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। घर में अनावश्यक वस्तुओं की भरमार, कपड़े जूतों की भरमार। कपड़े सँभालने के लिये अलमारियाँ भी कम पड़ गई, समान इतना कि घर भी छोटा लगने लगा। घर में चाहे खाने के लाले पड़े हों, घर में चाहे गाड़ी खड़ी करने के लिये जगह न भी हो तो भी गाड़ी, मोटरसाईकिल जरूर खरीदेंगे। इसके लिए चाहे लोन या किसी से ब्याज पर ही पैसा क्यों न लेना पड़े।

घर में इलैक्ट्रिक उपकरणों की इतनी भीड़ हैं

कि हर रोज कोई न कोई उपकरण ठीक कराने के लिए बाजाार जाना ही पड़ता है। कभी वाशिंग मशीन, कभी फ्रिज, कभी पंखा, कभी मिक्सी, कभी जूसर, कभी ए०सी०, कभी टी०वी०, कभी मोबाइल, कभी गाड़ी, कभी मोटर साईकिल, कभी ओवन, कभी कम्पयूटर, कभी गीज़र, कभी हीटर ओर भी न जाने कितने उपकरण घर में सिरदर्द बनकर घर व जेब पर कब्जा जमाये बैठे हैं। पुराने जमाने में लोग रोटी के लिये कमाते थे और आज रोटी पर इतना खर्च नहीं होता जितना इन उपकरणों को खरीदने व सँभालने में खर्च हो रहा है। यही भीड़ हमारे लिये भार बन चुकी है। इस भीड़ और भार ने तो हमारी रविवार की छुट्टी पर भी कब्जा कर लिया है। रविवार को भी हम चैन से नहीं बैठ सकते। भजन चिंतन करने की बात तो हम सोच भी नहीं पाते, करना तो दूर की बात है।

भीड़ चाहे व्यक्तियों की हो चाहे वस्तुओं की दोनों मन को चंचल व अशान्त बनाकर अपने में उलझाये रखेंगी। इस भीड के होते भजन चिंतन असंभव तो नहीं अति कठिन तो है ही।

भजन चिंतन का दूसरा विरोधी तत्त्व है भार। भार का सीधा सा अर्थ है भीड़ को अपना व अपने लिये मानकर उसी की चिंता करते रहना। यह मानसिक भार है। इस भार से मन भारी रहता है हल्का-फुल्का नहीं रह सकता। चाहे व्यक्ति का भार हो, चाहे वस्तु का, या फिर काम का भार हो, भार तो भार ही है। भीड़ का सम्बन्ध तन से और भार का सम्बन्ध मन से है। भार के होते मन भजन चिंतन नहीं कर पाता। भार की चिंता ही नहीं हटती फिर चिंतन कैसे हो? भजन चिंतन अगर कोई सज्जन करना चाहे तो भीड़ व भार दोनों से दूरी बनानी ही पड़ेगी। नहीं तो भीड़ और भार दोनों भजन में अवरोध पैदा करते रहेंगे।

भीर भार हरि भजन में,विघ्न करहिं बहु भाँति ।
इन दोऊन कूँ छाँड़ि करि,भजन करहुँ दिन राति ।।

भावार्थ-भीड़ और भार दोनों अनेक प्रकार से भजन में विघ्न करते हैं। इसलिए इन दोनों से कुछ दूरी बनाकर दिन-रात जब भी समय मिले भजन चिंतन करते रहना चाहिये।

जे चाहत हरि पावनौ, भीर भार दे त्याग ।
सहजहिं सुमिरन होयगो,करि अभ्यास विराग ।।

भावार्थ-अगर प्रभु को प्राप्त करना चाहते हो तो भीर से दूर व मन से भार उतार कर वैराग्यपूर्वक भजन चिंतन का अभ्यास करते रहना चाहिए। कुछ समय बाद भजन-चिंतन सहज ही होने लगेगा।

जा मग भीर अपार हो, सिर पे भार विशेष ।
केहि विधि पहुँचे लछि पै, पावै दुःख कलेश ।।

भावार्थ-आप स्वयं सोचो जिस मार्ग में बहुत भीड़ हो और सिर पर भारी भार हो, वह किस प्रकार अपने लक्ष्य पर पहुँच पायेगा, वह तो केवल दुःख क्लेश ही पायेगा।

भीर पीर सम जानि लै, भार भार सम जान ।
तज एकान्त निवास करि,भज लै श्रीभगवान्।।

भावार्थ-भीड़ को प्रकट दुःख और भार को भाड़ अर्थात् धधकती भट्ठी के समान जानो। जलन के सिवा इसमें ओर है ही क्या? भीड़ व भार से अलग हटकर नित्यप्रति कुछ समय ऐकांत बैठकर, भजन चिंतन का अभ्यास करना चाहिए।

तप्त रेत मग भीर है, भार दुपहरी धूप ।
भक्ति ज्ञान की राह में,चल न सकै नर भूप ।।

भावार्थ-भीड़ तप्ती रेत के समान है जो पाँव में छाले डालकर आगे बढ़ने से रोकती देगी व भार दोपहर की कड़कती धूप है जो बेचैन कर देगी, थका देगी। इस भीड़ व भार के होते चाहे भक्ति की राह हो या ज्ञान की, साधारण मनुष्य की कौन कहे विशेष कर्मठ नर श्रेष्ठ भी नहीं चल पाते।

भीर तेज सरि धार है ,भार चुड़ाई पाट ।
दोऊनमें कोऊ ऐक की,नहीं किसीपै काट

भावार्थ-भीड़ नदी की तेज धारा के समान है और भार नदी के चौड़े पाट की तरह है। इन दोनों में से किसी एक के होते हुए भी कोई नदी को तैरकर पार नहीं कर सकता। इन दोनों समस्याओं में से किसी एक का भी समाधान नहीं है। इसलिए दूर हटकर रास्ता बदलना ही समझदारी है।

भीर भार सौं दूर अति, मिले भजन को देश ।
मैं अरु हरि के बीच में, रहै न कछु भी लेश ।।

भावार्थ-भजन चिंतन करने का स्थान तो भीड़ व भार से दूर ही मिलता है। जहाँ अपने व प्रभु के बीच में कोई दूसरा न हो।

पढ़ीसुनी नहिं बात है,अनुभवकी कहुँ साँच।
भीरभार बिन भजनमें,लगै न दूसरि आँच।।

भावार्थ-मैं पढ़ी पढ़ाई या सुनी सुनाई बात नहीं कर रहा हूँ, अपने अनुभव से सच कह रहा हूँ । भीड़ व भार के सिवा भजन में कोई ओर दूसरा विघ्न नहीं है।

भीरअनल परचण्डअति,भार तेल सम जानि।
दूहुँन के संयोग सौं, होत भजन की हानि।।

भावार्थ-भीड़ तो अति प्रज्ज्वलित अग्नि व भार तेल के समान है। अगर इन दोनों का संयोग होता रहा तो पहली बात तो भजन चिंतन होगा ही नहीं, अगर थोड़ा बहुत हो भी गया तो वह टिकेगा नहीं। भीड़ की आहुति चढ़ जायेगा।

माया कर असि भीर है ,लगी भार की धारि।
भक्तिभजन की राह में,बीचहिं लीन्हे मारि।।

भावार्थ-माया के हाथ में भीड़ रूपी तलवार है। भार ही जिसकी तेज धार है। भजन करने वाले को बीच में ही यह मार डालती है। इसलिए इससे बचके भजन करो।

जन वस्तु की बाहुलता, याकौ कहते भीर।
अपनोपन मन भार है, बँध्यौ राग जंजीर।।

भावार्थ-व्यक्ति व वस्तु की बाहुल्यता को ही भीड़ कहते हैं। इन दोनों के प्रति अपनेपन का भाव ही मन का भार है। भीड़ का सम्बन्ध शरीर से व भार का सम्बन्ध मन से है। यह भीड़ व भार राग अर्थात् आसक्ति की जंजीर द्वारा मन व तन से बंधा है।

सत्सँगको नित बल मिलै,दृढ़ चित नित अभ्यास।
करूणदास या विघ्न सों, तब छूटन की आस ।।

भावार्थ-अगर नित प्रति सत्संग का संबल मिलता रहे और साधक दृढ़ चित्त से दृढ़ निश्चय पूर्वक भजन-साधन का अभ्यास करे तब जाकर इस भीड़ व भार के विघ्न से छूटने की आशा की जा सकती है।

कृपा और पुरूषार्थ ही इस समस्या का समाधान है।

प्रेम भगवान् से भी बढ़कर है

(परम श्रद्धेय पूज्य संत स्वामी श्रीरामसुखदास जी महाराज)

पूज्य संत स्वामी श्रीरामसुखदास जी महाराज

वे निर्गुण आनन्दमय सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा ही प्रेमरूप से साकार विग्रह के रूप में प्रकट होते हैं। परमात्मा का प्रेम बड़ा विलक्षण है। परमात्मा का दिव्य विग्रह प्रेममय होता है, जिसके दर्शन करने से खर, दूषण, जरासन्ध-जैसे विरोधी जीवों के भी चित्त उस ओर जबरन् खींच जाते हैं। उनके उस प्रेममय विग्रह में विलक्षण आकर्षण होता है। जहाँ भगवान् की कथा होती है, लीला विग्रह आदि का वर्णन होता है, वहाँ भी प्रेम, आनन्द और शान्ति की बाढ़-सी आ जाती है, सर्वत्र परम शान्तिमय वातावरण छा जाता है। उस वर्णन को सुनकर श्रद्धालु प्रेमियों का हृदय प्रेम से तर हो जाता है। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगती है, कण्ठ गद्‌गद हो जाता है, वाणी रुक जाती है और समस्त अंग पुलकित हो उठते हैं। इस प्रकार भक्त प्रेम में मतवाले हो जाते हैं। महात्मा श्रीनन्ददास जी कहते हैं-

कृष्ण नाम जब ते मैं श्रवण सुन्यौ री आली।
भूली री भवन मैं तौ बावरी भई री॥

जब उसकी कथा-वार्ता सुनने से ही इतना असर पड़ता है, तब वह स्वयं कितना प्रेममय है- इसका अनुभव तो परम प्रेमास्पद भगवान् के दर्शन किये हुए सच्चे प्रेमी भक्त ही कर सकते हैं; पर वे भी उस प्रेम का वर्णन करने में अपने को असमर्थ ही पाते हैं। प्रेम का स्वरूप वर्णन करते हुए श्रीनारद जी कहते हैं-

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।'

'मूकास्वादनवत्।'

'गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमानम-विच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्।'

(नारद भक्ति सूत्र 51-52, 54)

प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। गूँगे के स्वाद की भाँति उसका वर्णन नहीं हो सकता। यह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेदरहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है।

जो इस प्रेम के तत्त्व को जान जाता है, वह स्वयं प्रेममय बन जाता है। उसे प्रेम-ही-प्रेम दिखता है, प्रेममय भगवान् के सिवा उसे अन्य कोई वस्तु

नजर ही नहीं आती।

यह भगवत्प्रेम वाणी का विषय नहीं है। संसार में स्त्री, पुत्र, धन, शरीर, मान-बड़ाई आदि के प्रति जो प्रेम देखने में आता है, वह तो प्रेम ही नहीं है, राग है। राग और प्रेम में महान् अन्तर है। राग रजोगुणी है और प्रेम गुणातीत है, गुणों के दायरे से परे की वस्तु है। राग में अपनी इन्द्रियों की तृप्ति और अपना स्वार्थ रहता है, प्रेम में केवल प्रेमास्पद का आनन्द, उसकी प्रसन्नता और अपने स्वार्थ का सर्वथा त्याग रहता है। राग के विषय जड़ भोगरूप पदार्थ होते हैं, परंतु प्रेम के विषय साक्षात् चिन्मय परमात्मा होते हैं, जड़ पदार्थ नहीं। जीवों से जो प्रेम किया जाता है, उसका भी विषय चेतन ही होता है क्योंकि प्रेम स्वयं चिन्मय है, पर जहाँ केवल जड़ शरीर की ओर आकर्षण होकर प्रेम होता है, वह प्रेम नहीं, वह तो राग ही कहलाता है। हाँ, वह भी यदि स्वार्थ त्यागपूर्वक केवल उसके हित के लिये ही किया जाता है तो प्रेम ही कहा जाता है। अवश्य ही महापुरुषों से जो प्रेम किया जाता है वहाँ यदि शरीर में आकर्षण होकर प्रेम होता है तो भी, वह शरीर अन्य शरीरों की अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण होने तथा वहाँ अपना लौकिक स्वार्थ न होने के कारण, वह प्रेम ही माना जाता है। उसका ध्येय पारमार्थिक सत्य वस्तु है, अत: वह प्रेम शरीर को लेकर होने पर भी दोषी नहीं है तथा भगवान् में जो कामना सिद्धि के लिये प्रेम किया जाता है, वह भी यद्यपि जड़ वस्तुओं की प्राप्ति के लिये ही है, तो भी भगवान् से सम्बन्ध होने के कारण वह मुक्तिप्रद ही होता है। भगवान् ने कहा है-**मद्भक्ता यान्ति मामपि** (गीता 7/23)-'मेरे भक्त मुझे चाहे जिस भाव से भजें, अन्त में वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।' और उनकी कामना भी पूर्ण हो जाती है अथवा मिट जाती है। मतलब यह है कि महात्माओं का शरीर प्राकृत होने पर भी उनसे नि:स्वार्थ प्रेम करनेवाले का ध्येय चेतन है तथा भगवान् से सकाम प्रेम करनेवाले का ध्येय जड़ पदार्थ होने पर भी भगवान् का विग्रह चेतन स्वरूप है-यहाँ एक अंश में कमी रहने पर भी दोनों ही जगह चेतन का सम्बन्ध होने से वह प्रेम ही कहा जाता है और उससे नि:सन्देह कल्याण ही होता है। पर असली प्रेम तो वह है जो जड़तारहित, ज्ञानपूर्ण, निष्कलंक, नि:स्वार्थ, परमशुद्ध और केवल प्रेम के लिये ही होता है। यह प्रेम राग की समाप्ति होने के बाद जाग्रत् होता है और वैराग्य की ऊँची-से-ऊँची स्थिति होने पर आरम्भ होता है।

वह प्रेम रसमय, आनन्दमय, प्रकाशमय, त्यागरूप, दिव्य और परम शान्तिरूप है। उसमें दु:ख, विक्षेप, जलन, चिन्ता, उद्वेग, भय आदि का लेश भी नहीं है। प्रेम और भगवान् वस्तुत: दो नहीं, एकरूप ही हैं। ऐसा होने पर भी भगवान् के दर्शन होने पर प्रेम हो ही जाय, यह सर्वत्र अबाधित नियम नहीं है, पर प्रेम होने पर तो भगवान् मिल ही जाते हैं। इसलिये प्रेम की कीमत भगवान् भी नहीं हैं, बल्कि भगवान् की ही कीमत प्रेम है, अत: प्रेम भगवान् से भी बढ़कर है। इसलिये दिव्य प्रेम को प्राप्त किये हुए भगवद् भक्त भगवान् के दर्शनों की भी परवाह नहीं करते, बल्कि भगवान् ही उन भक्तों की चाह किया करते हैं।

प्रेम बड़ी ही अलौकिक वस्तु है। वह द्वैत-अद्वैत, भेद-अभेद, सबसे निराला, विलक्षण अलौकिक तत्त्व है। प्रेम और आनन्द वस्तुत: एक ही वस्तु है क्योंकि प्रेम होने पर ही आनन्द होता है और जहाँ आनन्द होता है, वहीं प्रेम होता है।

माता–पिता का भक्त ही गुरू भक्त हो सकता है

(पूज्य संत पंडित श्रीगयाप्रसाद जी)

माता–पिता तथा गुरू को प्रत्यक्ष भगवान् मानना चाहिए। यथाशक्ति इनको प्रसन्न करने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। माता–पिता एवं गुरू में श्रद्धा–भक्ति से ही श्रीभगवत्तत्त्व का ज्ञान या श्रीभगवत्प्रेम प्राप्त हो सकता है।

मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

'माता–पिता एवं गुरू भक्त ही श्रीभगवत्प्राप्ति का अधिकारी है।' माता पितादि गुरूजन की भक्ति किए बिना चाहे जितने उपाय कर ले पर भव सागर से पार जाना अति दुर्लभ है। पुनः–पुनः जन्म लेना पड़ेगा। श्रीगुरूजन भक्ति समस्त लौकिक–पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का मूल है। आज कलियुग ने इसी पर हाथ मारा है। मूल को ही उच्छिन्न कर दिया हे। अब अन्य चाहे जो कुछ स्वाँग भरे, पर ऊँचा उठना असम्भव है।

अनादिकाल से अब तक जितने महापुरूष हुए हैं, उनमें मातृ–पितृ भक्त या गुरू भक्त ही हुए है। इतिहास–पुराण में ऐसे अनेक व्याख्यान हैं।

भक्त पुण्डरीक अपने माता–पिता की साक्षात् भगवद् भाव से संलग्रतापूर्वक सेवा करता रहा। भगवान् स्वयं उसे दर्शन देने आए तथा आज उसी रूप से पण्ढरपुर में चन्द्रभागा नदी के तट पर ईंट के ऊपर खड़े पुण्डरीक भक्त की मातृ– पितृभक्ति का स्मरण करा रहे हैं।

जगद्गुरू श्रीआद्यशंकराचार्य जी एवं महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव सन्यासी होते हुए भी मातृ भक्त रहे। माता–पिता आदि गुरूजनों के प्रति श्रद्धवान् बनें। उनकी आज्ञा को श्रीभगवद् आज्ञा मानकर स्वीकार करें तथा उनकी आज्ञानुसार ही अपना जीवन बनाएँ। उनकी आज्ञा का उल्लंघन न करें। आज्ञापालन को ही अपना कर्त्तव्य मानें। उनकी आज्ञा में उचित–अनुचित, हानि–लाभ का विचार, शंका–संदेह एवं तर्क–वितर्क न करें।

गुरू पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।।
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू।
धरमु जाइ सिर पातक भारू।।
(श्रीरामच० अयो० 177/2)

गुरू जनों का सम्मान करें। अपने को

विवेकमान् मानकर उनकी अवज्ञा तथा अपमान न करें। माता – पिता, गुरूजनों की अवज्ञा एवं अपमान करने से समस्त पुण्यों का तत्काल ही नाश हो जाता है। जीते जी घोर दुःख एवं मरने के बाद कठोर नारकीय यन्त्रणा भोगनी पड़ती है।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ।।

माता – पितादि गुरूजनों की तत्परता – पूर्वक भगवद् भाव से सेवा करें। हमारे द्वारा उन्हें किसी प्रकार का दुःख न हो, यह सदैव सावधानी रखें। माता – पिता की हितभावना का ही विचार करें, उनके स्वभाव का नहीं। उनकी सेवा का ही विचार रखें, किन्तु उनसे स्वार्थ न सोचें। उनके लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दें, किन्तु उनके स्वत्व पर अपना अधिकार न मानें। वे अपनी वस्तु किसी को देना चाहें तो विरोध न करें। उत्तम सन्तान का यही कर्त्तव्य है कि अपने आपको बेचकर भी वृद्ध माता – पिता की सेवा करें।

जब तक माता – पिता आदि गुरूजन की सेवा का अवसर प्राप्त है, तब तक नित्य नियमपूर्वक सावधान होकर उनकी सेवा के व्रत का निर्वाह करें। सेवा – प्राप्ति के अवसर को अपना परम सौभाग्य मानें। मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ, ऐसा अहंभाव न करें, बल्कि यह भाव रखें कि कृपा करके उन्होंने मुझको अपनी सेवा का अवसर प्रदान किया है। यह मेरा अहोभाग्य है। उनकी सेवा करने में ही मेरे जीवन की धन्यता एवं सफलता है, ऐसा अनुभव करें। हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें।

घर के वयोवृद्ध दादा – दादी, माता – पिता आदि की इतनी सेवा करें कि ये प्रसन्न हो जाएँ। उनकी कृपा प्राप्त हो जाय तो समस्त अध्यात्म स्वतः ही सुलभ बन जाएगा।

गुरुणाः हि प्रसादाद् वै श्रेयः परमवाप्स्यति ।

'गुरुजनों के कृपा प्रसाद से निश्चय ही परम कल्याण की प्राप्ति होती है।'

माता – पिता आदि गुरुजनों की भगवद् भाव से सेवा बन जाए, तबही श्रीभगवत्सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त होता है। संत सेवा तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। यह तो किसी बिरले भाग्यशाली को ही प्राप्त होती है। यदि जीवन में संत अथवा श्रीसद्गुरु भगवान् की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो उसको बहुत ही सँभालें। इनसे कोई संसारी वस्तु न माँग बैठें। सेवा करके यही भाव रखें कि इनकी कृपा से मैं भी श्रीभगवत्प्रेम प्राप्ति के योग्य हो जाऊँगा।

उत्थान का मूल है माता – पिता की सेवा। जिसने माता – पिता की सेवा नहीं की है तथा जिसके मन में श्रीभगवत्प्राप्ति की इच्छा नहीं है, उसे श्रीसद्गुरु प्राप्ति सम्भव नहीं है। पूर्वजन्म के कर्म – संस्कारवश यदि संत प्राप्त हो भी जाएँ तो उनसे अध्यात्म लाभ प्राप्त नहीं होगा। लाभ प्राप्त होता है श्रीसद्गुरु की सेवा एवं उनकी आज्ञानुसार जीवन बना लेने से। बचपन से ही जिसने माता – पिता की आज्ञा नहीं मानी तथा सेवा करने का अभ्यास नहीं किया, वह श्रीसद्गुरु की आज्ञा पालन कैसे कर सकता है। माता – पिता की सेवा करने से ही श्रीसद्गुरु की प्राप्ति होती है। श्रीसद्गुरु की प्राप्ति होने से ही अध्यात्म पथ में चला जा सकता है।

आज के समय में माता – पिता की सेवा नहीं बन पाती है। माता – पिता वृद्ध हो गये, पुत्र अपनी पत्नी सहित नौकरी पर चला जाता है या अलग हो जाता है। फिर सेवा कैसे बने? माता – पिता के

अनन्त उपकार की उपेक्षा करके पुत्र उनकी सेवा न करे तो कितनी नीचता है? कोई -कोई तो सेवा न करके माता-पिता की अवज्ञा करते हैं, उनको दु:ख देते हैं। तब उनको सुख, शान्ति कैसे मिलेगी! जीते-जी घोर दु:ख, अशान्ति एवं मरने के बाद नरक में जाना पड़ेगा। पुत्र अगर अपने पिता की आज्ञा नहीं मानेगा और उनकी सेवा नहीं करेगा तो उसका पुत्र भी उसकी सेवा व आज्ञापालन नहीं करेगा। यह एक परम्परा बन जाएगी। ऐसे ही बहू सास की सेवा नहीं करेगी तो जब उसकी बहू आएगी तब वो भी उसकी सेवा नहीं करेगी। यह हमारे यहाँ की प्राचीन प्रणाली नहीं है। हमारे यहाँ की प्रणाली है-माता-पिता आदि गुरुजनों की श्रीभगवद् भाव से सेवा एवं उनकी आज्ञापालन करना।

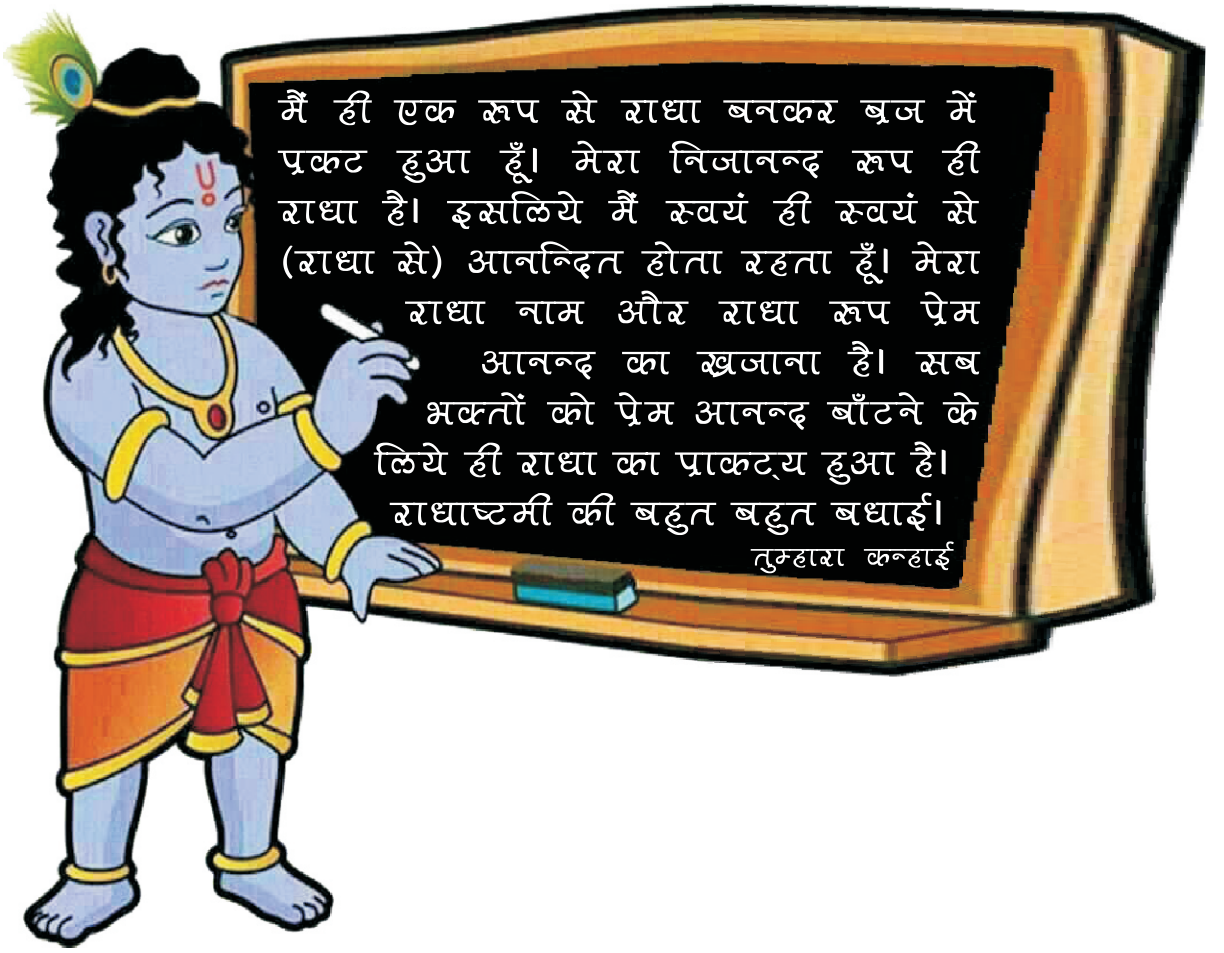

तुलसी काष्ठ माहात्म्य

तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहते द्विजः।
अप्यशौचोऽप्यनाचारो मामेवैति न संशयः।।

(स्कन्ध पुराण)

भगवान् विष्णु ब्रह्माजी से कहने लगे कि – जो द्विज तुलसी काष्ठ की माला को धारण करता है, वह अपवित्र और आचार भ्रष्ट होने पर भी मुझे ही आकर प्राप्त होता है – इसमें सन्देह नहीं।

धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसम्भवा।
दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः।।

तुलसी काष्ठ की माला जिसके शरीर में दिखाई देती है, वही मनुष्य भगवद्भक्त है।

तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहते नरः ।
फलं यच्छाम्यहं वत्स प्रत्यहं द्वारकोद्भवम् ।।

जो तुलसी की माला को धारण करता है, उसको प्रतिदिन मैं द्वारिकावास का फल प्रदान करता हूँ।

सदाप्रीतमनास्तस्य अहं प्राणवरो हि सः ।
तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहते नरः ।।

जो तुलसी काष्ठ की माला को धारण करता है, मैं उस पर सदा प्रसन्न रहता हूँ और वह मुझे प्राणों से भी बढ़कर श्रेष्ठ है।

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमते भुवि ।
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च न भयं शात्रवं कचित् ।।

जो तुलसी काष्ठ की माला से भूषित होकर इस पृथ्वी पर भ्रमण करता है, उसको दुःस्वप्न, दुष्ट निमित्त और शत्रु से भय कभी नहीं होता है।

बाहौ करे च मर्त्यस्य देहे यस्य स मे प्रियः ।
तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ।।

जिस मनुष्य के बाहु और सिर तथा हाथ में और शरीरपर तुलसी काष्ठ का आभूषण है, वह मेरा प्रियहै।

यद्गृहे तुलसीकाष्ठं पत्रं शुष्कमथार्द्रकम् ।
भवन्ति तद् गृहे नैव पापं संक्रमते कलौ ।।

जिसके घर में तुलसी काष्ठ तथा तुलसीपत्र शुष्क अथवा गीला रहता है, उसके घर में पाप का सम्भव कलियुग नहीं होता है।

शरीरं दह्यते येषां तुलसी काष्ठ वह्निना ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात् कथञ्चन ।।

(श्रीविष्णुधर्मोत्तर)

तुलसीकाष्ठानल के द्वारा जिनका देह भस्मीभूत होता है, विष्णुलोक से कदाच उनको पुनरागमन नहीं करना पड़ता है।।

यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठचयस्य हि ।
दाहकाले भवेन्मुक्तिः पापकोटियुतस्य च ।।

(श्रीप्रह्लाद संहिता)

कोटि पापों से पापी होने पर भी दाह के समय अन्यान्य काष्ठ के सहित तुलसीकाष्ठ किञ्चिन्मात्र होने से मृत व्यक्ति सर्व पाप मुक्त हो जाता है।

यः कुर्य्यात्तुलसीकाष्ठैरक्षमालां सुरूपिणीम् ।
कण्ठमालाञ्च यत्नेन कृतं तस्याक्षयं भवेत् ।।

(अगस्त्य संहिता)

जो व्यक्ति, तुलसीकाष्ठ के द्वारा सुन्दर जप माला एवं कण्ठ माला निर्माण पूर्वक व्यवहार करते हैं, उनके द्वारा कृत समस्त पूजादि कार्य अक्षय होते हैं।

वह दिन कब आएगा?

{परम श्रद्धेय पूज्य श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार जी (भाईजी)}

प्यारे नटवर! तुम्हीं बताओ कि मेरा चिरवाञ्छित वह सुदिन कब आयेगा? दुलारे चितचोर! तुम्हीं कहो कि वह शुभ घड़ी, वह सुहावना सरस समय, वह परम प्रिय अनमोल पल, वह भाग्योदय का मुहूर्त कब होगा, जब ये चिरतृषित नेत्र उस अनूप रूपमाधुरी का पान करके अन्य किसी भी छबि को न देख सकेंगे? अहा! वह समय बड़ा ही अनमोल होगा, जब प्रियतम का करोड़ों चन्द्रमाओं को लजानेवाला मोहन मुखड़ा घनश्याम मेघ से निकल पड़ेगा और अपनी विश्वमोहिनी चटकीली चाँदनी से विश्व को चमका देगा। उस समय कोयल पञ्चम स्वर में 'कुहू-कुहू' की ध्वनि से अपने प्राणाधार को पुकार उठेगी। पपीहा 'पी कहाँ' की रट से प्रेमिका को अधीर कर देगा। मोर के शोर से सहसा हृदय में चोट लग जाएगी। योगी चञ्चल चितवन से उस नवीन चन्द की ओर त्राटक लगा लेंगे और प्रकृति देवी उस अलौकिक सौन्दर्य की झाँकी पर थिरक-थिरक नाचने लगेगी।

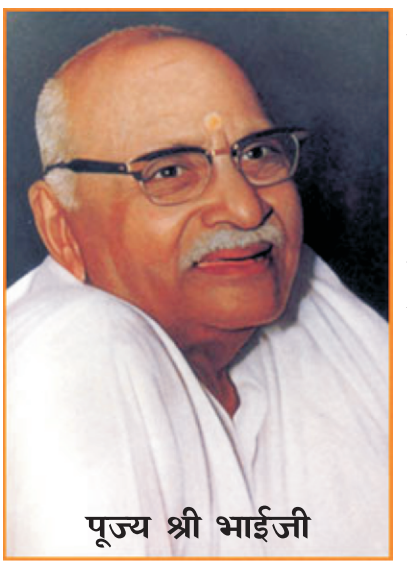

पूज्य श्री भाईजी

भक्त-मन-चोर! सच कहना यह चोरी की कला तुमने किससे और कब सीखी? सुनते हैं, तुम ब्रज-ललनाओं से बड़े इठलाते हो, उनका माखन चुरा लेते हो और कोई-कोई तो यहाँ तक कहते हैं कि उनका सर्वस्व लूट लेते हो। यदि यह बात सत्य है तो क्या मैं भी तुम्हारी इस लूट-पाट का एक नवीन पात्र बन सकता हूँ? क्या मैं भी तुमसे कह सकता हूँ कि ऐ अनोखे चोर! मेरा भी चित्त चुरा लो। क्या मेरी ओर से तुम्हारा नाम 'मन-चोर' न पड़े?

गोपीकुमार! वह समय कब आयेगा, जब मैं तुम्हें कदम्ब पर मन्द-मन्द हास्य करते हुए बाँसुरी की मधुर तान छेड़ते सुनूँगा, जिसे सुनकर व्रजललनाएँ अपने घर-द्वार, पति-पुत्र, कुटुम्ब-परिवार का परित्याग करके तुम्हारी ओर बलात् खिंच जाती थीं। लीलामय! सुना है, तुम्हारी मुरली में विचित्र आकर्षण है! उसके स्वरों में अपार अनोखापन है। बाँसुरी तो मैंने बहुत सुनी है, पर तुम्हारी बाँसुरी तो गजब कर देती है। देवता और मनुष्यों की कौन कहे, पशु-पक्षी तक उस ध्वनि को सुनकर स्तब्ध हो खाना-पीना भूल जाते हैं।

सुना है, अब भी तुम वृन्दावन की कुञ्जों में वही राग-तान छेड़ते हो और भाग्यवान् भक्तों को अब भी तुम्हारी वंशी की ध्वनि स्पष्टतया सुनाई देती है। यदि तुम्हारी कृपादृष्टि हो गई तो तुम उन्हें अपने मोहन मुखड़े का दर्शन दे कृतकृत्य कर देते हो। पतितपावन! क्या मुझे प्रेम के प्याले की एक बूँद पान

करने का भी अवसर न मिलेगा? क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि तुम्हारा एक प्रेम-पथ-पथिक तुम्हारे प्रेम-पथ से गुमराह हो जाए और कँटीले जंगलों में भटकते रहे?

यह तो बिल्कुल सच है कि मेरे अंदर व्रजललनाओं का-सा प्रेम नहीं, केवट के-से प्रेम-लपेटे अटपटे बैन नहीं, गज का-सा आर्त्तनाद नहीं, प्रह्लाद की-सी अनन्यता, निष्कामता नहीं, ध्रुव का-सा विश्वास नहीं, द्रौपदी की-सी पुकार नहीं, सूरदास की-सी लगन नहीं और गोस्वामी तुलसीदास का-सा भरोसा नहीं, फिर भी तुम ठहरे पतितपावन और मैं ठहरा तुम्हारा एक पतित। यदि तुम्हारा दावा है कि मैं पतित-से-पतित का भी उद्धार करता हूँ तो मैं इसी नाते तुमसे कहता हूँ और करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि वह दिन कब आयेगा, जब तुम इस पतित का उद्धार करके अपने पतितपावन नाम को सार्थक करोगे?

मेरे हृदय के राजा! वह दिन कब आयेगा जब मैं सांसारिक झंझटों को छोड़ विषयों से मुख मोड़, सोने की बेड़ी तोड़ तुम्हारे पादपद्मों से सम्बन्ध जोड़ूँगा? कब तुम्हारे चरणों का स्पर्श करके शान्ति-लाभ करूँगा, तुम्हारे कमलनयनों को देखकर तृषित नेत्रों को शान्त करूँगा, तुम्हारे मुखकंज को निरख-निरख कलेजे की कसक को मिटाऊँगा और तुम्हारी सुखमयी गोद में बैठकर तुम्हारे शीतल कर-स्पर्श से उस आनन्द का अनुभव करूँगा, जिसका करोड़ो जिह्वाएँ भी मिलकर वर्णन नहीं कर सकतीं।

वह दिन कब आयेगा, जब मैं भी बिल्वमंगल की तरह कहूँगा-

बाँह छुड़ाए जात हौ, निबल जानि कै मोहि।
हिरदें ते जब जाहुगे, मरद बदौंगो तोहि॥

तुम आगे-आगे भागते जाओगे और मैं पीछे-पीछे दौड़ता रहूँगा और तब तक नहीं छोड़ूँगा, जब तक तुम पकड़े न जाओगे?

मेरे जीवनाधार! अब न तरसाओ! बस, बहुत हो चुका। सभी बातों की एक सीमा होती है, सभी कामों का एक अन्त होता है।

'का बरषा सब कृषी सुखानें?'

यदि मिलना ही है तो अभी मिलो, इसी क्षण मिलो; मैं कबसे तुम्हारी प्रतिक्षा कर रहा हूँ। देखते-देखते आँखें फूट गयीं। रोते-रोते आँसू सूख गए। पुकारते-पुकारते गला बैठ गया, पर तुम न आए। हृदय-कपाट हर समय तुम्हारे लिए खुले पड़े हैं और प्रेमशय्या भी बिछी है, तुम जब चाहो उस पर शयन कर सकते हो। तुम्हें यह कहने का भी अवसर नहीं मिलेगा कि 'द्वार खटखटाया', पर उत्तर न मिला। द्वार खुला रहने से चोर-डाकू बड़ा तंग करते हैं, पर तुम्हारे ही कारण मैंने उसे खोल रखा है और तब तक खुला रखूँगा जब तक उनका तनिक भी अस्तित्व रह जाएगा।

यदि मैं यह समझ लूँ कि तुम नहीं आओगे, तब भी मुझे विश्वास नहीं हो सकता, क्योंकि तुम्हें आना ही पड़ेगा। अवश्य ही अब मैंने समझा, तुम्हारे कर्णरन्ध्र तक मेरी करुण पुकार नहीं पहुँची है, नहीं तो तुम अपना वाहन छोड़ पैदल ही दौड़ चले आते।

याद रखो, यदि देर करके आए तो तुम मुझे नहीं पा सकते।

प्रान तृषातुर के रहैं, थोरेहूँ जल दान।
पाछें जल भरि सहस घट डारेहुँ मिलैं न प्रान॥

भक्त श्री नवलकिशोरदास जी

(ब्रज के भक्त से साभार)

नन्दग्राम में नन्दबाबा का मन्दिर है। लगभग सवासौ वर्ष पूर्व उसकी अवस्था जीर्ण-शीर्ण थी। उसके जगमोहन के पत्थर का पुराना फर्श ऊबड़-खाबड़ हो रहा था। नन्दलाल को उसमें दौड़-भाग करते कष्ट होता था। उन्होंने सोचा-कितना अच्छा होता यदि यह फर्श चिकना संगमरमर का होता। सोचा, तो सोचते ही फर्श वैसा हो नहीं गया? नहीं! क्यों नहीं? यह भी क्या अखिल ब्रह्माण्ड के अधिपति और नियन्ता श्रीभगवान् के लिए कोई बड़ी बात थी? जिनकी अघटन-घटना-पटीयसी माया-शक्ति उनके इशारे मात्र से परिचालित हो एक ही पल में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों का सृजन करने की क्षमता रखती है, वह क्या इस छोटे-से कार्य को नहीं कर सकती थी? कर सकती थी, पर कर सकते हुए भी हाथ-पर-हाथ रखे कुछ न करने को विवश थी।

विवशता का कारण? कारण यह कि यहाँ ब्रज में उसके प्रभु का दूसरा आवेश है। यहाँ वे प्रभु नहीं, नन्द-यशोदा के लाल हैं, श्रीदाम सुदामा आदि के सखा हैं, गोपिकाओं के माखन चोर गोपाल और रासबिहारी हैं। यहाँ उनका एकमात्र लक्ष्य है उनके प्रेम-सेवा-रस का आस्वादन करना, अपनी प्रेम-रस की निरन्तर बढ़ती हुई भूख के लिए सामग्री जुटाते रहना। यहाँ वे खाते-पहनते वही हैं, जो उनके प्रेमी भक्त प्रेम से उन्हें देते हैं, रहते भी वहीं हैं जहाँ वे उन्हें प्रेम से रखते हैं, चाहे वह सोने का महल हो, या फूस की झोपड़ी। उन्हें वैकुण्ठ में ऐसी झोंपड़ी भी कहाँ नसीब होती है, जिसे उनके किसी भक्त ने प्रेम से तैयार किया हो, जिसका कण-कण उसके प्रेम-रस से सिक्त हो। यहाँ उनकी सभी शक्तियाँ उनसे दूर जा खड़ी होती हैं, जिससे उनके सान्निध्य से उनका यह आवेश भंग न हो जाय और उनके प्रेमरसास्वादन में बाधा न पड़ जाये।

संगमरमर का फर्श नन्द के लाला के किसी प्रेमी भक्त की प्रेम-सेवा से ही बन सकता था। उसने सोचा कोई ऐसा भक्त आ जाय तो उससे कहूँ। उसे किसी से अपने लिए कुछ कहने में या उससे कुछ माँगने में शर्म तो है नहीं। पर, वह माँगता है अपने भक्तों से ही। भक्तों को छोड़ उस बिचारे का और है ही कौन? जो उसकी सुने, वही तो हैं उसके नाते-रिश्तेदार, भाई-बन्धु और सखा। उन्हें ही वह अपना मानता है। अपनों से कुछ माँगने में शर्म की बात ही क्या है?

पर एक गुण और भी है उसमें। यदि उसे कोई, अपना न दीखे, तो किसी को अपना बना लेने में, उससे मित्रता कर लेने में या कोई न कोई नाता जोड़ लेने में उसे देर नहीं लगती। ऐसा कुछ जादू है उसके पास, ऐसी कोई मोहिनी शक्ति है उसमें कि जिस किसी के सामने वह एक बार आ जाता है, वह सदा के लिए उसका अपना बनकर रह जाता है। इसलिए जिसे वह अपना बनाना चाहता है, उसे बस एक बार अपनी झलक दिखा देता है। फिर उससे अपना जो काम चाहता है करा लेता है। देखने में तो वह बड़ा भोला है, जैसे कुछ जानता ही नहीं, पर नख

से शिखा तक इस प्रकार की चतुराई से भरा हुआ है।

इस बार उसने अपनी इसी चतुराई से काम लिया। राजस्थान के अलवर जिले के चौधरी का नगला ग्राम में श्रीनवलकिशोर रहते थे। वे गौड़ ब्राह्मण थे और रामानुज सम्प्रदाय में दीक्षित थे। विष्णु भगवान् की उपासना करते थे। उनकी माँ श्रीमती हीरादेवी बड़ी भक्तिमती थीं। वे नन्दलाल की उपासना करती थीं। नन्दलाल की उन पर बड़ी कृपा थी। एक बार वे दुमंजले से गिर पड़ीं। नन्दलाल ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया। उन्हें चोट जरा भी नहीं आयी। तभी उन्होंने वृन्दावन जाकर बस जाने का निश्चय किया।

वे वृन्दावन चली गयीं। साथ में श्रीनवलकिशोर और उनकी पत्नी भी गयीं। कुछ दिन बाद हीराबाई को नन्दलाल ने नित्यधाम में अपनी सेवा में ले लिया। नवलकिशोरजी पर माँ की भक्ति और वैराग्य का प्रभाव पहले से था ही। माँ के अन्तर्धान के पश्चात् उनका वैराग्य और भी तीव्र हो गया। उन्होंने अपनी धन-सम्पत्ति सब ठाकुर-वैष्णवों की सेवा में लगा दी। फिर पत्नी सहित नन्दग्राम चले गये। वहाँ आशेश्वर पर रहकर भजन करने लगे। एक दिन पत्नी से कहा-'यहाँ आशेश्वर पर चोरों का भय बहुत है। लाओ तुम्हारे आभूषण किसी सुरक्षित स्थान पर रख आऊँ।'

पत्नी ने अपने सब आभूषण दे दिये। उन्हें बेचकर नवलकिशोर जी ने साधु-वैष्णवों की सेवा कर दी। पत्नी ने पूछा-'आभूषण कहाँ रख आये?'

वे बोले-'नन्दलाला की तिजोरी में।'

पत्नी भक्तिमती थीं। वे समझ गयीं। उन्होंने भी इस पर कोई आपत्ति नहीं की।

कुछ दिनों बाद उन्होंने पत्नी को मायके भेज दिया और स्वयं वैराग्य वेश ग्रहण कर अकेले रहने लगे। नैष्ठिक ब्राह्मण होने के कारण उन्हें छुआछूत का विचार बहुत था। वे मधुकरी में सूखा अन्न माँग लाते। स्वयं बड़ी शुद्धता से रसोई बनाते। किसी की परछाई भी उस पर न पड़े, इसका विशेष ध्यान रखते। इस प्रकार बड़ी सावधानी और शुद्धता से तैयार किये हुए भोग को ही भगवान् विष्णु को अर्पणकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करते।

नन्दलाला नवलकिशोर जी की माँ के सम्बन्ध से उनसे भी अपना सम्बन्ध मानते थे। यह तो उनकी रीति ही ठहरी। वे अपने भक्त से तो सम्बन्ध मानते ही हैं, उसके सम्बन्धियों से, पूर्वजों और पितरों से, यहाँ तक कि उसकी आनेवाली सन्तान से और उस भूमि तक से, जिसमें उसने वास किया है, अपना निजी सम्बन्ध मान लेते हैं।

उन्होंने नवलकिशोरजी से फर्श की सेवा कराने का विचार किया। पर, इसमें उन्हें स्वाभाविक रूप से कुछ संकोच था; क्योंकि नवलकिशोरजी तो उनसे अपना कोई विशेष सम्बन्ध मानते नहीं थे। वे उनके विष्णु रूप के उपासक थे। नन्दलाला की नगरी में रहते थे। उनके मन्दिर में जाकर उनके भी दर्शन कर लिया करते थे, यह और बात थी। केवल इतने से उनका उनसे प्रेम का कोई विशेष सम्बन्ध तो बनता नहीं था।

तो नन्द के लाला ने उन पर अपना जादू चलाने की बात सोची। एक दिन वे एक व्रजमाई के घर मधुकरी (भिक्षा) को गये। वह जानती थीं कि यह बाबा मधुकरी में रोटी नहीं लेते, आटा ही लेते हैं। वह

गयी भीतर से आटा लाने। बरामदे में उसके दो छोटे-छोटे बालक सामने रखी थाली में से महेरी (छाछ में पका दलिया) खा रहे थे। नवलकिशोरजी ने देखा कि उनके साथ बैठे उसी थाली में से श्रीकृष्ण और बलराम भी खा रहे हैं। उनके हाथ और मुँह उन व्रज-बालकों की जूठी महेरी से सने हुए हैं और वे उनकी ओर देख-देख, जैसे उन्हें चिढ़ाने को आँखें मटकाते हुए उसमें लम्बे-लम्बे हाथ मार रहे हैं।

नवलकिशोर चकित, स्तम्भित और सम्मोहित-से एकटक उनकी ओर देखते रह गये। व्रजमाई आयी मधुकरी लेकर और हाथ बढ़ाकर बोली-'ले बाबा।'

पर, बाबा तो अपनी सुधि खो चुके थे। उनकी प्राकृतिक आँख और कान जड़ हो चुके थे। उन्हें व्रजमाई दीखती होती और उसके शब्द उनके कान में पड़ते होते, तब न वे अपनी झोली उसके आगे बढ़ाते। वे तो वैसे ही खड़े अपलक नेत्रों से श्रीकृष्ण-बलराम की रूपमाधुरी का पान कर रहे थे। व्रजमाई ने उनकी यह मुद्रा देख ऊँचे स्वर में कहा-'भिक्षा ले न बाबा, कहा देख रह्यौ है बालकन की ओर?'

तब कहीं बाबा ने चौंककर देखा आटे की मुट्ठी भरे सामने खड़ी व्रजमाई को। वे कुछ क्षण मौन रहे। फिर बोले-'मइया, यह मधुकरी रहने दे। मुझे बालकों की थाली में-से थोड़ी महेरी दे दे।'

'कहा बाबा? महेरी, बालकन की जूठी! तू कहा आज बाबरो हय गयौ है? आन दिन तो सच्ची रोटिउ नाय लेतो। आज बालकन की जूठी महेरी माँग रह्यौ है?'

व्रजमाई के लिए इससे बड़ी अचम्भे की बात और क्या हो सकती थी? वह क्या जानती थी कि वह भीतर गयी और आयी, इतने में ही बाबा का सब कुछ उलट-पलट हो गया। उन पर नन्द के लाला का जादू असर कर गया। वे अब पहले के से नैष्ठिक ब्राह्मण नहीं रह गये, जो किसी द्रव्य पर किसी की परछाईं पड़ जाने से भी उसे दूषित मानते थे और किसी ओर का पकाया द्रव्य प्रसादी हो तो भी उससे परहेज करते थे। उन्होंने अब समझ लिया कि व्रज का ठाकुर शुद्धता द्रव्य की नहीं, प्रेम की मानता है। वह प्रेम का ठाकुर है। नेम से नहीं, प्रेम से रीझता है।

बाबा ने कहा-'मइया, मैं बावरा नहीं हुआ हूँ। मेरा बावरापन अब छूट गया है। देरी मत करे। महेरी दे दे।' बाबा के नेत्रों से अश्रुधार प्रवाहित हो रही थी और उनका कण्ठस्वर अवरूद्ध हो रहा था।

व्रजमाई ने समझा बाबा सचमुच बावरा हो गया है। वह चुपचाप खड़ी रही। बाबा ने स्वयं लपककर थाली में से महेरी की मुट्ठी भर ली।

वे महेरी खा रहे थे, व्रजमाई देख रही थी। खाते-खाते वे किसी अप्राकृत आस्वादन के आनन्द का अनुभव कर रहे थे। आनन्द अश्रुओं से उनका मुख और वक्ष भीग रहा था!

इस घटना के बाद से बाबा की उपासना ने एक नया मोड़ लिया। उनके मन में एक नयी उथल-पुथल मचने लगी। वे सोचने लगे-मैंने इतने दिन विष्णु भगवान् की उपासना की। उन्होंने एक बार भी दर्शन नहीं दिये, पर इस व्रज के ठाकुर ने न भजने पर भी अयाचित भाव से ऐसी कृपा की! यह कितना दयालु है! कितना भोला है! विष्णु की उपासना में कितनी मर्यादा है, कितना संभ्रम और संकोच है। पर, यह तो किसी प्रकार के संभ्रम और संकोच को टिकने

ही नहीं देता। इसे देखते ही लगता है, जैसे यह कितना जन्म-जन्म का अपना है। जी चाहता है, इसे हृदय से लगाकर प्रेमाश्रुओं से अभिषिक्त कर दो और बस करते रहे। कभी भी विलग न करो। विष्णु भगवान् अपने ऊँचे सिंहासन पर विराजमान रहकर दूर से ही भक्तों के नैवेद्य को स्वीकार कर प्रसादी उनके लिए छोड़ देते हैं। पर, यह ब्रज के घर- घर में डोलता-फिरता व्रजवासियों की जूठन स्वयं खाता रहता है और उसमें न जाने कितने आनन्द का अनुभव करता है।

फलत: बाबा बाह्यरूप से तो पूर्ववत विष्णु की ही उपासना करते रहे, पर चिंतन में नन्दलाल को लाड़ लड़ाते रहे। वे विष्णु का ध्यान करना चाहते, तो भी नन्दलाल वहाँ आ विराजते। वे चेष्टा करते, तो भी विष्णु के लिए वहाँ कोई स्थान न पाते। एक बार जब वे नन्दलाल के मन्दिर के प्रांगण में चिंतन में बैठे थे, उन्होंने देखा कि नन्द का लाला वहाँ घुटनों चल रहा है, चलते -चलते रुक जाता है और घुटनों को हाथ से सहलाने लगता है। चिन्तन करते-करते तंद्रा आ गयी। स्वप्न में नन्दलाला ने कहा-'बाबा (खुरदरा फर्श) मेरे पायन में गड़े हैं (गड़ते हैं)।'

बाबा से नन्दलाला का कष्ट न देखा गया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो और जितनी जल्दी हो नन्दलाला के मन्दिर का फर्श चिकने संगमरमर का बनवाना है।

दूसरे दिन वे जोधपुर राज्य में मकराना के लिए चल पड़े। वहाँ पहुँचकर पत्थर के एक बड़े व्यापारी से नन्दलाला के मन्दिर के लिए संगमरमर के पत्थरों की भिक्षा माँगी। उसने कहा -'बाबा, जितने पत्थर चाहो ले जाओ। जिसने तुम्हें भेजा है, उसने मुझसे भी स्वप्न में तुम्हें पत्थर देने को कह दिया है।'

उस समय जोधपुर से मथुरा के लिए रेलगाड़ी की व्यवस्था तो थी नहीं। बैलगाड़ी से पत्थर नन्दग्राम पहुँचाये गये। शीघ्र नन्दलाल के मन्दिर और जगमोहन में सुन्दर संगमरमर का फर्श बनकर तैयार हो गया। जगमोहन के बाहर एक सुन्दर संगमरमर की छतरी भी बन गयी। आज भी शरद् में इस छतरी में नन्दलाल विराजते हैं।

नवलकिशोरजी अब पहले की तरह स्वपाकी (स्वयं भोजन बना के पाने वाले) तो रहे नहीं, पर नन्दग्राम के बाहर अब भी वे किसी ओर के हाथ का न खाते। एक बार वे मथुरा गये हुए थे। साथ में थे उनके शिष्य श्रीजुगलकिशोर। जुगलकिशोर को उन्होंने भेजा अपने ठाकुर की रसोई के लिए घी लाने। उन्होंने एक परचूनिये की दुकान पर घी माँगा। उसने कहा-'ले जाओ बाबा।'

जुगलकिशोरजी ने कहा-'मेरे पास पैसे नहीं हैं। ठाकुरजी की घी की सेवा तुम्हारी तरफ से हो जायेगी।'

घी देने के बाद बनिये ने कहा-'बाबा, मेरे कोई सन्तान नहीं है। तुम्हारे गुरूदेव सिद्ध-महात्मा हैं। उनसे कहना कुछ कृपा करें।'

भोले-भाले और उदार स्वभाव के जुगलकिशोर ने झट कहा-'अच्छा, अच्छा, हो जायेगी कृपा।'

वे लौटकर आये तो नवलकिशोर जी ने पूछा-'घी कहाँ से लाये?'

उन्होंने सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। नवलकिशोरजी को गुस्सा आया। उन्होंने उनकी पीठ पर चिमटा मारा और कहा-'मूर्ख, कृपा

बेचता फिरता है। कृपा का रोजगार करता है। आज मेरी कृपा बेची, कल मुझे बेच आयेगा। चला जा यहाँ से। मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता।'

जुगलकिशोर उनके चरणों में गिरकर रोते हुए बोले – 'बाबा! क्षमा करें। अब ऐसा नहीं करूँगा। बनिये से जाकर कह दूँगा – अपना घी वापस ले लो। बाबा तुम्हारे लिए कुछ नहीं करेंगे।'

नवलकिशोरजी का गुस्सा कुछ शान्त हुआ। वे बोले – 'अब तू वचन दे ही आया है, तो नन्दलाल उस पर कृपा अवश्य करेंगे। पर, बनिये ने तुझे ठग लिया। थोड़े से घी के बदले लड़का ले लिया। जा, कह उससे जाकर – लड़का होने पर नन्दलाल की गुलाबजल की सेवा नित्य उसी को करनी होगी।'

जुगलकिशोर ने जाकर उससे ऐसे ही कह दिया। वह सुनकर ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे, उसे सन्तान की ही प्राप्त हो गयी हो। नन्दलाल की गुलाबजल की सेवा उसने तुरन्त आरम्भ कर दी। कुछ ही दिनों में उसके लड़का हुआ। नाम रखा 'नमो।'

सन्तान होने पर उस परचूनिये ने नया काम पत्थर आदि का शुरू किया। फर्म का नाम रखा 'नवलकिशोर – जुगलकिशोर।' कंस टीला के नीचे यह फर्म दोनों महात्माओं के नाम से कई पीढ़ियाँ बीतने पर आज भी वर्तमान है।

नवलकिशोर जी जो कुछ भी करते, उसमें लक्ष्य होता केवल नन्दलाल की सेवा का। एक दिन 'छोटे मिसर' नाम के एक गोस्वामी बालक ने उनसे कहा – 'बाबा, तू तो सिद्ध है न! बता मेरी मुट्ठी में क्या है?'

बाबा ने कहा – 'बता दूँगा, पर नन्दलाल की सेवा करनी पड़ेगी।'

उसने सेवा का वचन दिया। बाबा ने तत्काल नन्दलाल का चिन्तन किया। देखा उनके ओष्ठ लाल हैं। वे बोले – 'लाला के होठ लाल हो रहे हैं। तेरे हाथ में बिम्बाफल है।' वह बालक जब तक जीवित रहा नन्दलाल की सेवा नित्य करता रहा।

हरियाणा के सेठ भगवानदास बेरीवाला एक धनाढ्य व्यक्ति थे। उनका काम कुछ खराब हो गया था। ऊँट पर चढ़कर वे नन्दग्राम आये और नवलकिशोर जी की कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से उनसे अपनी सारी स्थिति का वर्णन किया। उन्होंने कहा – 'नन्दलाल की सेवा करोगे, तो तुम्हारी उन्नति होगी।' वे नन्दलाल की सेवा करने लगे। तभी से उनकी उन्नति होने लगी। आज तक उनके परिवार के लोग नन्दलाल की सेवा करते आ रहे हैं। उनके पौत्र श्रीरतनलाल बेरीवाला ने ही नन्दलाल के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया, उसे उसका वर्तमान रूप दिया।

भगवानदास जी ने पीछे नवलकिशोरजी को अपना शिक्षा – गुरू मानकर उनसे मानसी – सेवा की शिक्षा ग्रहण की। नवलकिशोरजी की तरह वे भी मानसी सेवा में सिद्ध हो गये। उन्हें भी नन्दलाल के दर्शन होने लगे। उनके पौत्र रतनलालजी भी बड़े भक्त और साधु – वैष्णव सेवी थे। उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामी के 'वृहद्भागवतामृत' का हिन्दी अनुवाद कर मुद्रित कराया और उसका निःशुल्क वितरण किया।

श्रीनवलकिशोर बाबा नन्दलाल के लिए नित्य दस लड्डू अपने हाथ से बनाकर पुजारी को दिया करते। उसमें से आठ प्रातः बालभोग में उन्हें दिये जाते और दो रात को यशोदा माँ के पास रख दिये जाते, जिससे यदि रात को नन्दलाल को भूख लगे, तो

खिला दें। तभी से नन्दलाल के लड्डू-भोग का यह नियम चला, जो आज भी जारी है।

नवलकिशोरजी का नन्दलाल के प्रति वात्सल्यभाव था, पर अन्त में श्रीराधाजी के प्रेम की महिमा जान वे कान्ताभाव (सखी भाव) के उपासक हो गये। इस सम्बन्ध में मन्दिर के जगमोहन की दीवार पर उनका एक पद अंकित है, जिसकी दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

राधिकाजू प्रेम सुन्यो पढ्यो अमित कथा।
मोह लियौ सोई नेम मिल्यो श्याम श्रीपद कृपा।।

उनका एक हस्तलिखित ग्रन्थ भी है, जो नन्दग्राम के गोस्वामी श्यामजी के पिता के पास सुरक्षित है। उससे उपरोक्त कई घटनाओं के अतिरिक्त यह बात भी प्रमाणित होती है कि वे कान्ताभाव में सिद्ध थे उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

तब ते बड़ भाग्यनि भई मोही अपनाई नाथ ।
नाते वातो मान करि पुरषा किये सनाथ ।।
प्रगट वृन्दावन ल्याये मोहि,राखि करी उरमाल।
करि सब मन की रुचि मेरे पति नन्दलाल।।

नन्दगाँव में आशेश्वर पर, जहाँ नवलकिशोरजी भजन करते थे, उनकी समाधि है।

नाम जप का प्रभाव एवं रहस्य

(पूज्य संत श्री जयदयाल गोयन्दका जी)

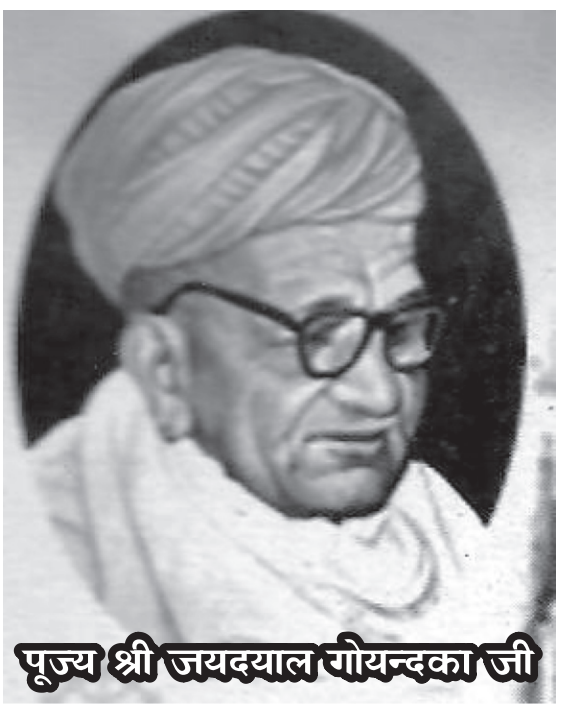

नाम का तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव समझना चाहिये। उससे नाम में स्वाभाविक रुचि होती है। रुचि होने से नाम का जप अधिक होता है। रुचि नाम का तत्व रहस्य समझने से होती है। नाम में गुण क्या है? गीता में दैवी सम्पदा के 26 गुण बताये गये हैं। वे सब-के-सब भजन करने वालों में आ जाते हैं ओर भी गुण आ जाते हैं। नाम जप से नामी याद आ जाता है। जिसका स्मरण किया जाता है, उसका अक्स (बिम्ब) पड़ता है। नीच के दर्शन, स्पर्श, भाषण से नीच का असर पड़ता है। साधु के संग से साधु, पापी के संग से पापी हो जाता है। भगवान् में जितने गुण हैं, वे सब भगवान् के नाम में हैं। नाम और नामी में भेद नहीं है। भगवान् के नाम जप से भगवान् की स्मृति हो जाती है। तुलसीदास जी कहते हैं-

सुमिरिए नाम रूप बिन देखें ।
आवत हृदय स्नेह विसेषें ।।

भगवान् के नाम स्मरण से हृदय में विशेष रुचि, प्रेम होता है। मनुष्य कोई भी काम करे, करते-करते उसमें रुचि हो जाती है। आरम्भ में बालक विद्या पढ़ता है तो पहले रुचि नहीं होती, परंतु पढ़ते-पढ़ते आगे जाकर रुचि हो जाती है। उसी प्रकार नाम स्मरण करने से भी आगे जाकर उसमें रुचि हो जाती है। नाम के जप से दया, क्षमा, समता, शान्ति, प्रीति, ज्ञान सब आ जाते हैं।

राम नाम मनि दीप धरू जीह देहरीं द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ।।

जैसे दीपक को देहरी पर रखने से बाहर-भीतर प्रकाश हो जाता है। इसी प्रकार राम नाम रूपी मणि जिह्वा रूपी देहरी पर रख दे तो बाहर- भीतर प्रकाश हो जाता है।

मणि हवा से नहीं बुझती। मुँह द्वार है। 'रा' उच्चारण करने से सब पाप बाहर निकल जाते हैं और 'म' के उच्चारण से कपाट बन्द हो जाते हैं, जिससे पाप फिर नहीं आ सकते। तुलसीदास जी ने कहा है कि नाम का प्रभाव इतना है कि इससे दुर्गुण, दुराचार और पाप सब नष्ट हो जाते हैं, नीच पवित्र हो जाते हैं। प्रभाव की बात बताते हैं-

जबहिं नाम हिरदै धरो भयो पाप को नाश ।
जैसे चिनगी आग की परी पुराने घास ।।

नाम हृदय में धारण करते ही क्षण भर में सारे पापों का नाश हो जाता है, जैसे सूखी घास में चिनगारी पड़ने से वह भस्म हो जाती है।

यह प्रभाव है कि पापी से पापी का भी उद्धार हो जाता है। भजन के प्रभाव से स्वयं भगवान् वश में हो जाते हैं।

सुमिरि पावनसुत पावन नामू ।
आपुन बस करि राखे रामू ।।

पवनसुत हनुमान जी ने भगवान् के नाम स्मरण से भगवान् राम को अपने आधीन कर रखा है।

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। अर्थात् उसने भली भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

यह नाम के भजन का प्रभाव है कि गरुड़ जी ने काकभुशुण्डि जी से पूछा कि आपके आश्रम में आने से सब पवित्र हो जाते हैं, यह ज्ञान का प्रभाव है या भक्ति का प्रभाव है? काकभुशुण्डि जी ने कहा- 'यह सब भक्ति का ही प्रभाव है।'

अपनी आत्मा का कल्याण चाहने पर अपना मन नहीं लगे तब भी भगवान् का भजन ही करे। आतुर आदमी के लिये भी यह बात है कि भगवान् का भजन करे। भगवान् का नाम निराधार का आधार है। भगवान् से भी बढ़कर भगवान् के नाम को कहें तो भगवान् की ही बड़ाई है और अतिशयोक्ति भी नहीं है। नाम का गुण-प्रभाव जानना चाहिये। गुण क्या है? संसार में जितने गुण हैं वे सब नाम लेने वाले में अपने आप आ जाते हें। यह भजन की महिमा है। दुगुर्ण, दुराचार का अपने-आप नाश हो जाता है, यह

प्रभाव है।

भगवान् के नाम का बढ़ा भारी प्रभाव है, जिससे पापी के पापों का नाश हो जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि खूब पाप करो। जो यह समझकर पाप करता है, वह नाम के रहस्य को नहीं समझता। जो पुरुष यह समझता है कि पाप कर लो, भजन करके पाप का नाश कर लेंगे, यदि इस आभास से पाप करने लगे तो नाम पाप की वृद्धि हेतु हो गया। जो यह समझकर पाप करता है उसके पाप का नाश नहीं होता।

नाम की ओट में पाप करे तो वह नाम पाप बढ़ाने वाला होता है–यह नाम का रहस्य समझना है। नाम की ओट में पाप करना भगवान् का अपराध है। पूर्व के पापों के लिये क्षमा माँग ले और भविष्य में पाप न करने की प्रतिज्ञा कर ले तो पूर्व के पापों की माफी है–ऐसा न्याय है। नाम में बड़ा भारी रहस्य भरा है। नाम का तत्त्व, नाम का गुण, नाम का प्रभाव समझ में आ जाय तो नाम छूट नहीं सकता। निरन्तर जप चलता ही रहता है। छोड़ नहीं सकता, फिर बेड़ा पार है।

जिस प्रकार भगवत् चिन्तन से भगवत्प्रेम प्राप्त होता है, वैसे ही केवल भगवन्नाम जप से भी भगवान् में प्रेम हो जाता है। श्रीतुलसीदास जी ने अपने ग्रन्थों में 'राम' नाम की विशेष महिमा कही है। इसी प्रकार वेदों में और योग दर्शन में 'ॐ' की, भागवत आदि में 'कृष्ण' की, शिवपुराण में 'शिव' की, विष्णु पुराण में 'विष्णु' 'हरि' आदि की, गीता में 'ॐ' 'तत्' 'सत्' नामों की, कुरान शरीफ में 'अल्लाह' 'खुदा' की, बाईबल में 'गॉड' की, जैन ग्रंथों में 'अर्हन्त' और 'ॐ' की, आर्य समाज के ग्रन्थों में 'ॐ' की विशेष महिमा कही गयी है। इसी तरह अन्यान्य सभी सम्प्रदायों के महानुभावों ने अपने-अपने इष्टदेव के नाम की विशेष महिमा कही है। अतः समझना चाहिये कि राम, कृष्ण, गोविन्द, वासुदेव, विष्णु, शिव, हरि, ॐ, तत्, सत्, अल्लाह, खुदा, गॉड आदि परमात्मा के जिस नाम में जिस मनुष्य की रुचि, श्रद्धा, विश्वास हो, प्रेम और निष्काम भाव से तत्परतापूर्वक जप करना उचित है।

नाम जप यदि परम श्रद्धापूर्वक किया जाय तो उसकी महिमा तो कोई गा ही नहीं सकता क्योंकि श्रद्धा, प्रेम होने से जप निरन्तर अपने-आप ही होने लगता है। फिर यदि किसी भी प्रकार की कामना न रखकर निःस्वार्थ भाव से केवल कर्त्तव्य समझकर नाम जप किया जाय तो उसके तुल्य तो कोई भी साधन नहीं है।

इस प्रकार नाम जप करने वाले साधक को तो तुरंत भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। उच्चकोटि का विशुद्ध प्रेम निष्काम भाव होने पर ही होता है। उसी को अनन्य विशुद्ध प्रेम कहते हैं। जिसके प्राप्त होने पर भगवत् साक्षात्कार होने में क्षण भर का भी विलम्भ नहीं हो सकता।

जो नामोच्चारण अकेले या बहुत व्यक्ति मिलकर बाजे के साथ या बिना बाजे के उच्च स्वर से सामूहिक रूप में किया जाता है, उसे 'कीर्तन' कहते हैं। उस नाम-कीर्तन की महिमा अपार है। किंतु उसमें भी करें तो बहुत अच्छा। यदि कहीं श्रद्धा ना हो तो अपनी इच्छानुसार किसी भी नाम का जप कर सकते हैं।

कपूर दहन – एक दिव्य प्रयोग

भारत में अति प्राचीन काल से विभिन्न देवी – देवताओं की आरती करने का विधान रहा है। आरती के समय कपूर भी जलाया जाता है तथा विभिन्न भक्तजनों को आरती दी जाती है। इन सबके पीछे मात्र यह उद्देश्य था कि किसी भी स्थान विशेष पर कुछ समय तक कपूर का दहन हो तथा साधक का परिवार लाभान्वित हो। दरअसल कपूर के दहन से उत्पन्न वाष्प में वातावरण को शुद्ध करने की अधिक क्षमता होती है। इसकी वाष्प में जीवाणुओं, विषाणुओं तथा अतिसूक्ष्म से सूक्ष्मतर जीवों का शमन करने की शक्ति होती है। इन सूक्ष्म जीवों को प्राचीन ग्रंथों में भूत, पिशाच, राक्षस आदि की संज्ञा दी गई है। अत: कपूर को घर में नित्य जलाना परम हितकर है। इसको नित्य जलाने से नकरात्मक ऊर्जा समाप्त होती है और सकारात्मक ऊर्जा में वृद्धि होती है। कपूर जलाने से निम्नलिखित लाभ होते हैं –

1. घर का वातावरण शुद्ध रहता है, बीमारियाँ उस घर में आसानी से आक्रमण नहीं करती हैं।

2. दु:स्वप्न नहीं आते।

3. देवदोष एवं पितृदोषों का नाश होता है।

4. घर में शान्ति बनी रहती है।

इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को ज्यादा नहीं तो कम से कम कपूर का एक छोटा सा टुकड़ा नित्य घर में अवश्य ही जलाना चाहिये। हमारे पूर्वजों ने पूजा के समय कपूर की आरती उतारने का विधान बना रखा था। इसके पीछे भी यही उद्देश्य था कि 5 – 7 मिनट अर्थात् जितने भी समय तक भगवान् की आरती उतारी जाये, उतने समय तक पर्याप्त कपूर का दहन हो, जिससे वातावरण अधिकाधिक शुद्ध हो। इससे सकारात्मक ऊर्जा की वृद्धि होती है।

व्रत और उत्सव

21 सितम्बर – सोमवार – **श्रीराधाष्टमी**

24 सितम्बर – गुरुवार – **पद्मा एकादशी व्रत**

28 सितम्बर – सोमवार – **पूर्णिमा**

8 अक्टूबर – गुरुवार – **इन्दिरा एकादशी व्रत**

12 अक्टूबर – सोमवार – **अमावस्या**

13 अक्टूबर – मंगलवार – **नवरात्र प्रारम्भ**

22 अक्टूबर – गुरुवार – **विजया दशमी**

24 अक्टूबर – शनिवार – **पापांकुशा एकादशी व्रत**

27 अक्टूबर – मंगलवार – **शरद्पूर्णिमा**

30 अक्टूबर – शुक्रवार – **करवाचौथ व्रत**